सिद्धयोग

संस्थापक :
योग योगेश्वर अनन्तश्री
चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्तों और
शिक्षाओं का
प्रतिपादक मासिक

वर्ष : 35
अंक : 3
जून 2002

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
संवाई (आगरा) - 283 202 (उ.प्र.)

SIDDHYOG
MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्त श्री
चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा

संयुक्त सम्पादक :
डा० विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार
मण्डलों के अध्यक्ष
एवं
गुरु भाई-बहिन

एक प्रति	रु०	9-00
वार्षिक शुल्क	रु०	90-00
द्विवार्षिक	रु०	170-00
आजीवन	रु०	800-00

इस अंक में

- अमृत कण 2
- संस्कार एवं कर्म भुगतान के तीन स्तर (विशेष लेख) 3
- सम्पादकीय 8
- वैज्ञानिक आविष्कार तथा योग
  श्री श्यामसुन्दर एडवोकेट 10
- सिद्धयोग-महासागर
  कु० रुक्मिणी वर्मा 13
- हंसोपनिषत्प्रकाशिनी
  पं० श्री मनोहरलालजी शर्मा 15
- भाव-प्रसून
  श्रीमती सरिता भारद्वाज 19
- श्रीकृष्ण जन्म सद्‌शिक्षा के साथ
  राजेश कुमार श्रीवास्तव 21
- दे दो अपनी कृपा का दान
  विद्यारण्य भारद्वाज 25
- बहन जामवन्ती पर गुरुदेव कृपा
  श्रीमती सुमंगलादेवी 26
- आश्रम समाचार
  कु० रुक्मिणी वर्मा 29
- श्री सद्‌गुरु मुख से सुनी कथायें
  डा० विजय सिंह 35
- स्वास्थ्य चर्चा 38

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 35
अंक 3

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विषदान् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

जून
2002

नि षु सीद गणपते गणेषु
त्वाम् आहुर्विप्रतमं कवीनाम्।
न ऋते त्वत् क्रियते किं
चनारे महामर्कं मघवञ्चित्रमर्च।।

(ऋग्वेद १०/११२/९)

भावार्थ

हे गणपति ! आप अपने भक्तजनों के मध्य प्रतिष्ठित हों। त्रिकालदर्शी ऋषि रूप कवियों में श्रेष्ठ ! आप सत्कर्मों के पूरक हैं। आपकी आराधना के बिना दूर या समीप में स्थित किसी भी कार्य का शुभारम्भ नहीं होता। हे सम्पत्ति एवं ऐश्वर्य के अधिपति ! आप मेरी इस श्रद्धायुक्त पूजा-अर्चना को, अभीष्ट फल को देने वाले यज्ञ के रूप में सम्पन्न होने हेतु वर प्रदान करें।

अमृत कण

ते सर्वगं सर्वत: प्राप्य धीरा युक्तात्मानः सर्वमेवाविशन्ति।
वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्वा।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृतात्परिमुच्यन्ति सर्वे।।

(मुण्डकोपनिषद् ३/२/५-६)

वे धीर युक्तात्मा (योगी) सर्वत्र सर्वव्यापी ब्रह्म को पाकर उस सर्व में ही प्रवेश करते हैं। वेदान्त विज्ञान का अर्थ (परमात्मा) जिनके चित्र में सुनिश्चित हो चुका है, जो सन्यास योग से यत्नवान् और शुद्ध सत्व हो गये हैं, वे सब ब्रह्मलोक में परान्तकाल में परमामृत होकर मुक्त होते हैं।

* * *

सर्वचिन्ता समुत्सृज्य सर्वचेष्टाविवर्जितः।
नादमेवानुसंदध्यान्नादे चित्तं विलीयते।
नादासक्तं सदा चित्तं विषयं नहिकांक्षति।।

(नादबिन्दुपनिषद्)

सारी चिन्ता और सब काम छोड़कर नाद का ही अनुसन्धान करे, इससे नाद में चित्त का लय हो जाता है और वह नादानुविद्ध चित्र अन्य किसी विषय की आकांक्षा नहीं करता।

* * *

यदि शैलसमं पापं विस्तीर्णं बहुयोजनम्।
भिद्यते ध्यानयोगेन नान्यो भेदः कदाचन्।।

(ध्यान बिन्दूपनिषद्)

पर्वत के समान भी बहुयोजन विस्तीर्ण पापराशि हो तो वह सब भी ध्यानयोग से नष्ट हो जाती है, और कोई उपाय नहीं है।

* * *

योगहीनं कथं ज्ञानं मोक्षदं भवतीह भोः।
योगोऽपि ज्ञानहीनस्तु न क्षमो मोक्षकर्मणि।।
तस्माज्ज्ञानं च योगं च मुमुक्षुर्दृढमभ्यसेत्।

(योगशिखोपनिषद्)

योगहीन ज्ञान और ज्ञानहीन योग कभी भी मोक्षप्रद नहीं हो सकता। इसलिए ज्ञान और योग इन दोनों का ही मुमुक्षु को दृढ़ता के साथ अभ्यास करना चाहिये।

□ विशेष लेख

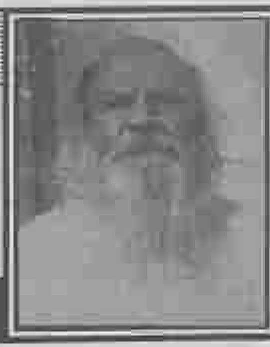

संस्कार एवं कर्म भुगतान के तीन स्तर

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

देखो! आज के व्याख्यान में मैं तुम्हें समझाऊँगा कि किस प्रकार से ध्यानाभ्यास करने पर साधक अपने कर्म संस्कार को हल्के में ही भोग कर मुक्त हो जाया करता है। अविद्या ही अच्छे बुरे सब कर्मों की जननी है। योग दर्शन में भगवान पतञ्जलि देव ने एक सूत्र में कहा है-

अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनु विच्छिन्नोदाराणाम् अर्थात् अविद्या प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार अवस्था वाले कर्मों की क्षेत्र भूमि है। मैंने तुम्हें अपने पिछले व्याख्यानों में संचित, क्रियमाण और प्रारब्ध कर्मों का स्वरुप समझाया था। इनमें से **प्रारब्ध कर्मणाम भोगादेव क्षयः** अर्थात् प्रारब्ध कर्मों का क्षय भोग से ही होता है। मनुष्य को अपने प्रारब्ध को भोगना पड़ता है। परन्तु यदि कर्म संस्कार भोगने से ही खत्म होंगे तो पुरुषार्थ क्यों किया जाये? यह बात ठीक है किन्तु मनुष्य इस कर्म भोग को अपनी योग्यता एवं मानस स्तर के आधार पर अलग-अलग प्रकार से भोग करता है। हमारे कर्म दो प्रकार के क्रम में होते हैं एक होता है **सोपक्रम कर्म** तथा दूसरा होता है **निरुपक्रम कर्म**। सोपक्रम कर्म उस प्रकार से होते हैं जैसे सूखी लकड़ी शीघ्र जल कर समाप्त हो जाती है उसी प्रकार से इस श्रेणी के कर्म जल्दी जल्दी फलोन्मुख होते हैं और शीघ्र भुगतान में आ जाया करते हैं। निरुपक्रम कर्म उसी प्रकार से भुगतान में आया करते हैं जिस प्रकार से गीली लकड़ी धीरे-धीरे जल कर बहुत देर में समाप्त होती है। योगदर्शन मे एक सूत्र आया है- **'सोपक्रम निरुपक्रमं च कर्म तत्संयमादपरान्तज्ञानमरिष्टेभ्यो वा'** अर्थात् सोपक्रम और निरुपक्रम दो प्रकार के कर्म होते हैं उन दोनों में संयम करने पर मृत्यु का ज्ञान होता है अथवा अरिष्टों से भी मृत्यु का ज्ञान होता है। **'अवश्यमेव भोक्तव्यम कृतं कर्म शुभाशुभम्'** अर्थात् किये गये अच्छे बुरे सभी कर्मों का फल मनुष्य को भोगना ही पड़ता है। मनुष्य अपने कर्म संस्कार को तीन प्रकार से भोगा करता है। स्थूल शरीर से, सूक्ष्म शरीर से तथा कारण शरीर से।

जो व्यक्ति तमोगुणी तथा बहिर्मुखी वृत्ति वाले हैं उन्हें कर्मों का भुगतान स्थूल शरीर में ही करना होता है। यह कर्म की उदारावस्था कहलाती है। स्वाध्यायशील ध्यान योगी तथा गुरू भक्त साधक सूक्ष्म शरीर में अपने कर्मों को भोगा करते हैं। स्वप्न में भी कर्मों का भुगतान हो जाया करता है। जब स्वप्न में अपनी या दूसरे की मौत दिखाई देता है ज्योतिषी लोग इसका फलादेश बताते हैं कि आपत्ति टल गई अर्थात् क्लिष्ट संस्कार का भुगतान सूक्ष्म में ही हो गया। अब इस का फल शुभ होगा। यह भी एक प्रकार से कर्म संस्कार के तन्वीकरण की ही अवस्था है। सत्व, रज और तम हमारे अन्तः करण में रहा करते हैं और यह अन्योऽन्याश्रित रहते हैं इनमें एक प्रमुख तथा

अन्य दो गौण रहा करते हैं। इन तीन गुणों के आधार पर ही चित्त की पाँच अवस्थाओं का वर्णन व्यासदेव जी ने अपने योग भाष्य में किया है। इनमें पहली अवस्था है मूढ़ावस्था। इस अवस्था में तमोगुण प्रधान रहता है। इस अवस्था के प्राणी प्रमाद ओर आलस्य निद्रा और मोह से घिरे रहते हैं। **'अप्रकाशो अप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च'** अर्थात् इस अवस्था में प्राणी में अप्रकाश, कर्मों में अप्रवृत्ति प्रमाद और मोह बढ़ा रहता है। दूसरी अवस्था है क्षिप्तावस्था की। इस अवस्था में चित में रजोगुण प्रधान रहता है। इस अवस्था के प्राणी इस भौतिक दुनियाँ को ही सब कुछ मानने वाले होते हैं। उनका सिद्धान्त रहता है **'यावत जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्'** अर्थात् जब तक मनुष्य रहे उसे सुखपूर्वक ही रहना चाहिये। ऋण करके भी घी खाना चाहिये। उन लोगों का परमार्थ में विश्वास नहीं होता **'असौमया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि'। 'ईश्वरोऽहं अहंभोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी'** अर्थात् मैंने अमुख शत्रु को मार दिया है औरों को भी मैं मार दूँगा। मैं ही समर्थ हूँ, भोगों को भोगने वाला हूँ। मैं ही सिद्ध, बलवान तथा संसार में सुखी पुरुष हूँ। इस प्रकार से नाना प्रकार की भ्रान्तियों में पड़ा हुआ होता है। इससे आगे की अवस्था है **विक्षिप्तावस्था। क्षिप्ताद् विशिष्टम् विक्षिप्तम्** अर्थात् क्षिप्त से जो श्रेष्ठावस्था है उसे विक्षिप्तावस्था कहते हैं। इस अवस्था वाले प्राणी लोक परलोक दोनों में विश्वास रखने वाले होते हैं। धर्म अधर्म को मानने वाले, तथा आस्तिक विचारों के होते हैं। इनमें सतोगुण का उदय हो चुका होता है। इस श्रेणी के लोग पाप-पुण्य दोनों ही करते हैं।

इनकी धारणा रहती है- राम नाम रटते रहो, जब लग घट में 'प्राण' अर्थात् जब तक घट में प्राण है राम राम रटते रहना चाहिये। इन लोगों का परमार्थ में विश्वास तो होता है किन्तु इन्हें ठीक-ठीक मार्ग न मिलने के कारण भटकते रहते हैं। इनकी साधना बन नहीं पाती। चौथी अवस्था आती है एकाग्रता की। इस अवस्था में सतोगुण पूर्णरूप से उदित हो जाता है। इन लोगों की वृत्ति कभी बहिर्मुखी व कभी अन्तर्मुखी रहती है इस कारण से कर्मों का भुगतान थोड़ा स्थूल शरीर से तथा थोड़ा सूक्ष्म शरीर से होता है। इस सम्बन्ध में मैं अपने बड़े गुरु भाई श्री गोपालानन्द जी का प्रसंग सुनाता हूँ। पूर्व जन्म में इन्होंने किसी आशंका से क्रोध में आकर अपनी पत्नी के हाथ काट दिये थे। इस दुःख में छटपटाती हुई उसने अपना शरीर छोड़ दिया। इसके फलस्वरूप इनका भी इस जन्म में बाजू कटना था किन्तु ऐसा न होकर सूक्ष्म में भुगतान हो गया। ऋषिकेश आश्रम में कुँये से पानी खींचते हुये एक लम्बी कील से इनकी बाजू बुरी तरह से छिल गयी और घाव हो गया। इस प्रकार से उनके संस्कार का थोड़ा स्थूल व थोड़ा सूक्ष्म में भुगतान हो गया। मैंने तुम्हें कई बार मंगामल के विषय में बताया है। मंगामल के कठोर संस्कार का भुगतान श्री प्रभु जी ने सूक्ष्म में कर दिया था। मंगामल कामी व्यक्ति था। श्री प्रभु जी के पास आने वाले व्यक्तियों को देखकर उसकी धारणा थी कि ये बंगाल आदि से वशीकरण, सम्मोहन आदि सीख आये हैं इसलिये यहाँ भीड़ रहती है। मैं भी इनसे मंत्र तंत्र सीख लूँगा। मेरे पास भी स्त्री पुरुषों की भीड़ लगी रहा करेगी। इसी विचार से वह एक माह लगातार श्री प्रभु जी के पास आता रहा। प्रभु जी ने उसे बात करने का मौका ही

नहीं दिया। एक रोज प्रभु जी ने उससे पूछा- 'तुम्हें क्या चाहिये ? तुम रोज आते हो किन्तु कहते कुछ नहीं हो। उसने कहा- मुझे भी आप तन्त्र मन्त्र सिखा दें यही मैं चाहता हूँ। श्री प्रभु जी ने उस कागज पर लिख दिया कि तू लाहौर की अमुक स्त्री पर आसक्त है। वह स्त्री तुम्हारे पास आयेगी। तुम से काफी धन व आभूषण लेकर लाहौर चली जायेगी। इसके पश्चात् कुछ दिन बाद तुम्हारे पास उसका पत्र आयेगा उस में लिखा होगा- तुम मेरे पास ३०० रु. लेकर आ जाओ। इसके बाद मैं सदा के लिये तुम्हारी हो जाऊँगी। तुम ३०० रु. लेकर लाहौर जाने को तैयार हो जाओगे परन्तु उस समय प्रभु तुम्हारी रक्षा करेंगे। यदि तुम रुपये लेकर चले गये तो वह स्त्री उसी रात सोते में तुम्हें छुरा घोंप कर मार देगी'। यह लिखकर प्रभु जी ने यह कागज मंगामल को दे दिया और कहा- यह मंत्र है, अभी इसे नहीं पढ़ना। जब हम कहेंगे तभी पढ़ना। मंगामल ने यह कागज अपने पास सुरक्षित रख लिया। कुछ दिन बाद श्री प्रभु जी के लिखे अनुसार ही लाहौर से उस स्त्री का पत्र आया कि तुम तीन सौ रुपये लेकर लाहौर चले आओ इसके बाद मैं तुम्हारी ही हो जाऊँगी। मंगामल उसके कहे अनुसार तीन सौ रुपये लेकर लाहौर जाने के लिये चल पड़ा। वह अमृतसर में स्टेशन पर इधर उधर घूम रहा था, इतने में श्री प्रभु जी मिल गये। श्री प्रभु जीने कहा- मंगामल! तू कहाँ जा रहा है? प्रभु जी ने दो-तीन बार उससे पूछा परन्तु उसने कोई उत्तर नहीं दिया। अन्त में क्रुद्ध होकर मंगामल बोला- आप को बिल्कुल भी शिष्टाचार नहीं है? मंगामल, मंगामल कह कर पुकार रहे हो। आप को कम से कम लाला जी, मंगामल जी आदि सम्बोधन करके पुकारना चाहिये। प्रभु जी बोले- 'ठीक है भाई, हमसे गलती हो गई। हमने तुम्हें एक मंत्र लिख कर दिया था अब तुम उस मन्त्र को पढ़ लो। इससे तुम्हें लाभ होगा। श्री प्रभु जी के बचनों को मान कर मंगामल ने उस कागज को पढ़ा। उस कागज में जो भी लिखा था वह उसके जीवन में सत्य सत्य घट चुकी थी। उसने फिर भी लाहौर जाने का विचार नहीं छोड़ा। श्री प्रभु जी से पुनः पूछने लगा- ''क्या वह मुझे अपने हाथ से ही मारेगी यदि ऐसी बात है तो फिर भी मैं जाऊँगा। उसके हाथ से मर जाऊँगा तो भी अच्छा है।'' यह कह कर वह जाने को तैयार हुआ। यकायक प्रभु जी उसके मन में प्रेरणा करते हैं। वह सोचने लगा- ये पूर्णसिद्ध योगि राज हैं इन्होंने सब बातें पहले ही लिख दी थी मैं इन्हीं योगेश्वर के चरणों में बैठकर अपना जीवन क्यों न सुधार लूँ? ऐसा सोच कर उसने लाहौर जाने का विचार छोड़ दिया। श्री प्रभु जी के चरणों में गिर कर कहने लगा- ''प्रभु जी! मुझ से बहुत गलती हो गई है। मैंने आप को अपशब्द कहे हैं। मैं आप से क्षमा माँगता हूँ। आप मुझे क्षमा कर दें।''

श्री प्रभु जी ने उसे क्षमा कर दिया और योग मार्ग की दीक्षा दे दी। प्रभु जी के शक्तिपात के फलस्वरूप मंगामल आठ-आठ घन्टे एक ही आसन में ध्यान में बैठा रहता था। ध्यान की काफी ऊँची स्थिति हो गई। एक बार ध्यान में उसने देखा कि वही लाहौर वाली स्त्री उसके पास आई तथा उसने उसे छुरा घोंप दिया। ध्यान से उठकर उसने श्री प्रभु जी को अपना यह अनुभव सुनाया। श्री प्रभु जी ने कहा-''आज तेरा यह क्लिष्ट संस्कार समाप्त हो गया है। उस घटना के बाद मंगामल को उस

स्त्री का बिल्कुल भी विचार नहीं आया। उसे उससे घृणा हो गई। इस प्रकार ध्यान में बैठे रहने के कारण ध्यान में ही सूक्ष्म शरीर में ही उस संस्कार का भुगतान हो गया।

कुछ कर्मों का भुगतान स्थूल शरीर में तो होता है किन्तु थोड़े में निबट जाता है। यह उन लोगों का होता है जो ध्यान योग तो करते ही हैं साथ साथ सांसारिक कर्मों में भी लगे रहते हैं। इसका एक दृष्टान्त दे रहा हूँ। अमृतसर में लालचन्द नाम का व्यक्ति अखबार बेचने का काम किया करता था। वह श्री प्रभु जी का दीक्षित बच्चा था। श्री प्रभु जी प्रायः अपने बच्चों को आने वाले क्लिष्ट संस्कारों के बारे में संकेत कर दिया करते हैं। श्री प्रभु जी ने ध्यान में लालचन्द से कहा कि अमुक व्यक्ति तुमसे छः सौ रुपये ले लेगा और तुम्हें मारेगा किन्तु रक्षा हो जायेगी। लालचन्द के पास छः सौ रुपये कहाँ थे? वह सोचने लगा- "मेरे पास पैसे ही नहीं हैं तो कोई मुझे कैसे मारेगा?" दूसरे दिन शाम को वह रावी रोड़ पर टहलने के लिये गया। उसने वहाँ सड़क पर पड़े एक पर्स को देखा। उसने उसे उठा लिया और देखा तो उसमें रुपये थे। वह पैसे गिन ही रहा था कि कोई बदमाश छुरा लेकर आ कूदा और कहने लगा- 'हरामजादे! पैसे गिन रहा है' यह कह कर उसने पर्स ले लिया और छुरा घोंप कर उसे मरा समझ कर चला गया। लालचन्द दर्द से कराहने लगा-उसकी यह आवाज किसी राहगीर ने सुन ली। वह उसके पास पहुँचा और सब दृश्य देखा। अन्य लोगों की सहायता से शीघ्र ही लालचन्द को अस्पताल ले जाया गया। इस प्रकार उसकी प्राण रक्षा हो गई। लालचन्द ने पूर्व जन्म में उसके छः सौ रु. देने थे जिसका भुगतान उसे इस जन्म में करना पड़ा। यह होता है कर्म का कुछ स्थूल में तथा कुछ सूक्ष्म में भुगतान। कुछ कर्म संस्कार ऐसे होते हैं जो विच्छिन्न हो जाते हैं। मलावन जिला एटा में हमारा एक बच्चा जगमोहन था। ध्यान में अच्छी स्थिति थी। वह अपने इष्टदेव में लय हो जाया करता था। लयता होने पर योगी को अनुभव होता है- **शिवोऽहम्, गणपतिरहम्।** मैं ही शिव हूँ। मैं ही गणपति हूँ। जगमोहन की भी ऐसी स्थिति हो जाया करती थी। एक दिन ध्यान में श्री प्रभु जी ने बताया कि कल दिन में ग्यारह बजे तुम्हें सर्प काटेगा। जगमोहन ने ध्यान में ही उसकी निवृत्ति का उपाय पूछा। श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया यदि तुम ध्यान में बैठकर अपने इष्ट देव में लय रहो तो बच जाओगे। जगमोहन ने अपने भाई को अपने पास बिठा लिया और अपने बचाव के उपाय करके अपने कमरे में ध्यान में बैठ गया। वह भगवान विष्णु में लय हो गया। ठीक समय पर एक भयंकर काला सर्प कमरे के ही किसी कोने के छिद्र में से निकल आया। आकर वह सर्प जगमोहन के शरीर पर घूमने लगा। परन्तु जगमोहन को इसका कुछ भी ज्ञान नहीं हुआ। वह अपने इष्टदेव में लय था। पाँच मिनट तक सर्प शरीर पर घूमता रहा। उसके बाद वह फिर उसी बिल में चला गया। उसका भाई यह सब देखता रहा। थोड़ी देर बाद जगमोहन ध्यान से उठा। अपने भाई से पूछने लगा कि क्या सर्प आया था उसके भाई ने बताया कि एक भयंकर काला सर्प आया था। उसके शरीर पर पाँच मिनट तक चक्कर लगा कर वापिस चला गया। जगमोहन ने ध्यान में श्री प्रभु जी से पूछा-"प्रभु जी! सर्प ने मुझे काटा क्यों नहीं? प्रभु जी बोले- तू होता तो काटता विष्णु को थोड़े ही काटना था। तू तो उन्हीं में लय था। अतः वह घूम कर चला गया। उसका घोर क्लिष्ट

संस्कार विच्छिन्नावस्था को प्राप्त हो गया। साधक अपने आप को जितना जितना अन्तर्मुखी बना लेता है उसके आत्मतेज के प्रभाव से कर्म संस्कार क्षीण होते चले जाते हैं। विशुद्ध प्रकाश में लय होने पर संस्कार कट जाया करते हैं। **'ते प्रतिप्रसवहेया सूक्ष्माः'** समाधि की उच्चावस्था में योगी कर्मसंस्कारों को कारण शरीर में संस्कार मात्र से ही क्षण में काट लेते हैं। मैंने तुम्हें बताया था कि अविद्या ही सब दुःखों का कारण है। इसी से सब कर्म व संस्कार बनते हैं।

अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्त तनु विच्छिन्नोदाराणाम्

अर्थात् अविद्या ही अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश नामक चार अन्य क्लेशों की प्रसव भूमि है। इन पाँच क्लेशों की ही प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार अवस्थायें होती हैं। प्रसुप्तावस्था में संस्कार चित्त में दबे पड़े रहते हैं। कालान्तर में कभी भुगतान में आयेंगे। जैसे समाधि की अवस्था में क्लिष्ट वृत्तियाँ दबी पड़ी रहती है। व्युत्थान में ये फिर जाग्रत हो जाती हैं। तनु संस्कार वे होते हैं जिन्हें हम क्रियायोग की साधना-से ध्यान योग की साधना से हल्के कर देते हैं उनका हमारे शरीर व मन पर बहुत थोड़ा असर पड़ता है। मनुष्य जितना-जितना समाधि का अभ्यास बढ़ाता है उतना ही संस्कार तनु होते चले जाते हैं। किन्तु बीज रूप से चित्त में पड़े रहते है। समाधि की पराकाष्ठा पर चित्तवृत्ति के पूर्ण निरोध होने पर ये बीज भी नष्ट हो जाता है। विच्छिन्नावस्था में कर्म संस्कार कट जाया करते हैं। गुरु देव की कृपा तथा योगी की साधना के बल से ऐसा संभव होता है। संस्कारों की चौथी अवस्था उदारावस्था होती है। इस अवस्था में कर्म संसकार को स्थूल शरीर पर भोगना ही पड़ता है। जो बहिर्मुखी वृत्ति के लोग हैं उन्हें अपने संस्कार उदारावस्था में भोगने ही पड़ते हैं। इसलिये कर्म संस्कारों को काटने का एक मात्र उपाय ध्यान योग है। तुम सब अपने को इस पवित्र योग मार्ग की ओर लगाओ। यही कल्याण का मूल साधन है। बार-बार सभी को आशीर्वाद।

***

जितना ही अधिक मनुष्य अपने अन्तर में मिलने लगता है और अन्तःकरण से सरल और पवित्र हो जाता है, उतनी ही अधिक ऊँची चीजें वह बिना परिश्रम के समझने लगता है, क्योंकि उसे परमात्मा ही अन्तःप्रकाश प्रदान करते हैं।

निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन

आचार्य (डा०) दासलाल शर्मा

भगवान् ने श्री मद्भगवद् गीता के दूसरे अध्याय में आत्मतत्व का विस्तार से वर्णन किया है। आत्मा उद्देद्य होने से किसी वस्तु से भी छेदन भेदन करने में नहीं आता है। अदाह्य, अक्लेद्य एवं अशोष्य होने के कारण इसे जलाया नहीं जा सकता, जलादि से गीला नहीं किया जा सकता तथा वायु आदि से इसे सुखाया नहीं जा सकता। इसका कारण यह है कि यह नित्य है, सर्वगत है, अचल है तथा अविकारी है। अव्यक्त होने से यह अचिन्त्य है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि आत्मा अनुभव में आता नहीं है। योग शास्त्रों में आत्मतत्व की प्राप्ति का उपदेश विस्तार से किया गया है।

अतः अनादिकाल से ही हमारे पूर्वज योगी नाना मनीषी आत्मानुसन्धान में लगे हुए है। और उनमें से बहुत से योगी योगाग्नि अपने समस्त कर्मों को दग्ध करके कृत्य-कृत्य हो चुके हैं। जब तक मनुष्य त्रिगुण के दायरे में रहता है। तब तक उसका कर्म संस्कार बनता ही रहता है, इसी कारण से मनुष्य जन्म मरण की श्रृंखला में बंधा हुआ रहता है। इस श्रृंखला को तोड़ने का एक मात्र साधन योग है।

'जन्म बन्ध विनिर्मुक्तः पद गच्छन्ति अनामयम्' अर्थात् जन्म बन्धन से छूटकर आत्म योगी दुःख समुद्र को पार करके अभय हो जाता है। **''आत्मज्ञ शोक संतीर्णो न विभेति कुतश्चन''** आत्मज्ञ शोक को पार करके किसी से भी भयभीत नहीं होता है।

गीता में भगवान ने साधक को गुणातीत होने के लिये स्थल-स्थल पर उपदेश किया है। **'सर्वारम्भ परित्यागी गुणातीतः सः उच्यते'** की बात भगवान ने कही है। गुणातीत अवस्था के आधारभूत तत्व **'अव्यभिचारिणी भक्ति'** की आवश्यकता का प्रतिपादन किया गया है। अव्यभिचारिणी भक्ति से ही साधक तीनों गुणों को लांघकरके ब्रह्मभूत होने के लिए समर्थ होता है। गीता के बारहवें अध्याय में भी भगवान सर्वारम्भ परित्यागी' वाले साधक को अपना प्रिय भक्त बतलाते है।

'सर्वारम्भ परित्याग' ही निष्काम कर्मयोग कहलाता है। निष्काम कर्मयोगी आत्मकामी होता है आत्मकाम का पर्याय ही निष्काम है। आत्मकामी ही त्रिगुणातीत होता है। जब तक जीव में क्लेश बना रहता है तब तक वह त्रिगुणातीत अवस्था को प्राप्त नहीं हुआ करता। क्लेशों की आत्यन्तिक निवृत्ति के लिये ही योगी लोग तत्मन्जय आदि सिद्धियों से युक्त होकर कई-कई सौ वर्ष तक समाधि में लीन रहा करते हैं।

सिद्ध गुरुदेव अपने शिष्यों को बहुत समय तक साधनारत रखकर त्रिगुणातीत अवस्था की ओर ले जाया करते हैं। परम-गुरुदेव महाप्रभु श्री राम लाल जी महाराज रूद्र गुरु के रूप में ऐसे उदाहरण

हैं जो सिद्धयोग प्रणाली से शिष्यों को आत्मोत्थान कराकर उसे चरम लक्ष्य की ओर पहुँचा देते हैं। आज भी उनके परम पावन चरणों से जुड़े साधक उनकी करुणा कृपा से योग की रहस्यमय क्रियाओं का अनुभव और प्रकाश पा रहे हैं। उनके संकल्प से शिष्यों के कर्म संस्कार समूह का क्षय होता रहता है। जब तक योग त्रिगुणातीत या असम्प्रज्ञात् की ओर नहीं चला जाता तब तक गुरुदेव की शक्ति साधक के अन्दर क्रियाशील रहकर कार्य करती रहती है। सिद्धयोग संकल्प योग है। गुरुदेव का संकल्प ही इसमें कार्य करता है। क्रियात्मक पक्ष को अपनाये बिना योग केवल 'शब्द ब्रह्म' है। योग की विशुद्ध परिभाषा जानने वाले लोग ही आज कम है, जबकि सत्संग का प्रचार खूब चल रहा है। इसलिये साधक के लिये प्रथम यह आवश्यक है कि वह पहले योग सिद्धान्त को ठीक ठीक समझ ले। समाज में दान यज्ञ, तीर्थ तप आदि की महिमा गान करने वाले लोग बहुत है किन्तु आत्मज्ञान की जिज्ञासा और उसकी प्राप्ति कराने वाले लोग कम ही हैं। वेद वचन है कि यदि आत्म ज्ञान को प्राप्त कर लिया तब तो ठीक है यदि आत्मज्ञान को नहीं पा सके तो महान अनर्थ की बात है। इसलिये योग साधक को बार-बार इस बात पर विचार करना चाहिये कि वह आत्मवान हो जाये।**'आत्मवन्त नें कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय'**। आत्मवान को कोई भी कर्म किसी प्रकार से बाँध नहीं सकते।

***

इस शरीर का क्या भरोसा ? यह क्षणभर में नष्ट हो जाय। इस दशा में सर्वोत्तम उपाय यही है कि हरेक श्वास में परमात्मा का नाम लो। बिना उसके नाम से एक साँस भी न जाने पावे। बस, इससे बढ़कर उद्धार का कोई उपाय नहीं है।

वैज्ञानिक आविष्कार तथा योग

श्री श्यामसुन्दर एडवोकेट (विधायक दतिया)

योग के विषय में अनेक भ्रान्तियाँ प्रचलित है। बहुत से व्यक्तियों की मान्यता है कि योग अत्यन्त भयावह तथा रहस्यपूर्ण एक ऐसी विद्या है, जिससे दूर रहना ही अच्छा है। कुछ लोग ध्यान तथा समाधि से डरते हैं और समझते हैं कि यदि इस मार्ग में अग्रसर हुए और एक बार भी समाधि लग गई, तो फिर प्राणों को कैसे नीचे उतारा जावेगा। कहीं प्राण पखेरु ही तो नहीं उड़ जावेंगें। यदि अधिक वैराग्य हो गया, तो कहीं घर-परिवार तो नहीं छूट जायेगा। योग के ब्राह्य अंगों अर्थात् यम, नियम आसनादि के सम्बन्ध में भी ऐसी ही भय तथा भ्रान्तियाँ है। आश्चर्य का विषय तो यह है कि ऐसी भ्रान्तियाँ अच्छे तथा शिक्षित समुदाय में भी घर कर गई है। ऐसे व्यक्ति योग विद्या की उपादेयता, सार्थकता तथा सार्वभौमिकता को मानते हुए भी, भय के कारण इसमें प्रविष्ट होते-होते रह जाते हैं, और साधना रहित केवल पुस्तक-ज्ञान के आधार पर योग-विषयक चर्चा करने में ही सन्तोष कर लेते हैं।

कुछ लोग ऐसा भी कहते पाये जाते है कि योग एक ढकोसला मात्र है और इस विद्या के आधार में कोई सकारणता एवं वैज्ञानिक पक्ष नहीं है। वे सभी विचार कुसंस्कारों एवं अविद्या के कारण है और भ्रान्तिपूर्ण हैं।

महामहिम पूज्यपाद सद्‌गुरुदेव भगवान योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के पावन चरण कमलों की कृपा-जन्य प्रेरणा से, प्रस्तुत संक्षिप्त लेख में इस अकिंचन द्वारा योग की कतिपय शक्तियों के सम्बन्ध में यह बताने का प्रयत्न किया जा रहा है कि योग न केवल विज्ञान ही है, अपितु समस्त विज्ञान का जनक है। भौतिकवादी व्यक्तियों के लिये भी, जो प्रत्येक विद्या में वैज्ञानिक पक्ष देखना चाहते है, योग एक वैसा ही परिपूर्ण विज्ञान हैं, जैसा अन्य कोई भी भौतिक विज्ञान-शास्त्र हो सकता हैं।

यहाँ केवल कुछ वैज्ञानिक आविष्कारों को लेकर योग की शक्तियों को प्रतिपादित किया जा रहा है। वाष्प यंत्रादि तथा अन्य प्रारम्भिक वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण, आज से लगभग २५ वर्ष पूर्व तक, धार्मिक विश्वासों दर्शन शास्त्रों एवं आध्यात्मिक विद्याओं के विरुद्ध एक ऐसा विषाक्त तथा प्रबल प्रभंजनात्मक वातावरण निर्मित हुआ था जिसमें प्रतीत होता था कि इन प्राचीन तथा आध्यात्मिक शाश्वत विद्याओं की जड़ें हीं उखड़ जावेंगी। किन्तु जैसे-जैसे वैज्ञानिक आविष्कारों में वृद्धि होती गई और भौतिक, रासायनिक तथा अन्य प्रकार विज्ञान शास्त्र के विकास के कारण आणविक क्षेत्र में भी प्रवेश प्राप्त हुआ तथा मानव ने एतत् द्वारा समय, गति, आयाम, दूरी तथा ब्राह्य-प्रकृति के अन्यान्य तत्वों पर आंशिक अधिकार प्राप्त किया, वैसे-वैसे इसी उन्नति कारण उसे मानसिक तथा बौद्धिक स्तर पर पुनः चिन्तन करने का आकर्षण तथा अवसर प्राप्त हुआ। और आज तो स्थिति यह है कि भौतिक विज्ञान की जिस उन्नति ने कभी जिन धार्मिक विश्वासों तथा शाश्वत विद्याओं को झकझोर दिया था, वही अब उनकी सर्वाधिक पुष्टि करती है।

भौतिक विज्ञान की उन्नति की आधारशिला तथा कारण मानव-मस्तिष्क ही है। अतः भौतिक क्षेत्र में भी मानव-मस्तिष्क ही विज्ञान का जनक माना जावेगा। यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि निर्माणकर्ता सदैव ही निर्मित वस्तु से श्रेष्ठ तथा अधिक शक्तिशाली होता है। अतः आज तक के सभी वैज्ञानिक आविष्कार मानव-मस्तिष्क की देन होने के कारण स्वयं मानव-मस्तिष्क में निहित शक्तियों से फिर भी निम्न ही रहेंगे। कहने का तात्पर्य यह कि इन सब आविष्कारों से मानव मस्तिष्क महान है। योग-शास्त्र में तो मानव-मस्तिष्क से भी परे 'पुरुष' का स्थान है।

एक्स-रे के आविष्कार से पूर्व मानव शरीर की आन्तरिक खराबियों को बताने वाला कोई ब्राह्य साधन उपलब्ध नहीं था। किन्तु जब से एक्स रे का आविष्कार हुआ तो शरीर के अन्दर की खराबी जैसे टूट-फूट धब्बों आदि का पता चल जाता है। विद्युत शक्ति के विशेष प्रयोग तथा प्रक्रिया से अन्दर का एक पारदर्शी चित्र उपलब्ध हो जाता है। इस वैज्ञानिक यंत्र के आविष्कार के पश्चात भी देखने का कार्य आँख द्वारा मानव मस्तिष्क ही करता है। केवल मात्र मानव-मस्तिष्क को आँख द्वारा शरीर के अन्दर के भाग को एक पारदर्शी चित्र द्वारा देखने का एक साधन मात्र यह विज्ञान उपलब्ध करा सकता है।

जैसे पहले कहा जा चुका है कि इस यंत्र का आविष्कर्ता मानव मस्तिष्क ही है। अतः मस्तिष्क की शक्ति निश्चित ही इस यंत्र से अधिक है। तो पर सिद्ध यह होता है कि जब मानव-मस्तिष्क द्वारा निर्मित एक भौतिक यंत्र विशेष, शरीर के भीतरी भाग के सम्बन्ध में किंचित जानकारी देने का साधन बन सकता है, तो एक अधिक अथवा पूर्ण विकसित मानव-मस्तिष्क इस यंत्र की सहायता के बिना किसी भी मानव अथवा अन्य शरीर की आन्तरिक स्थिति के सम्बन्ध में अधिक व्यापक तथा सुक्ष्मतम जानकारी तथा ज्ञान भी प्राप्त करा सकता है।

भगवान पतंञ्जलिदेव के योग दर्शन के सम्बन्धित सूत्रों में इसका स्पष्ट वर्णन हे। **''नाभिचक्रे काया व्यूह ज्ञानतम''** अर्थात् नाभि चक्र में संयम करने से सम्पूर्ण शरीर को रचना तथा उसकी आन्तरिक स्थिति का ज्ञान हो जाता है सद्गुरुदेव भगवान द्वारा अनुगृहीत संयत, नियंत्रित, विकसित तथा एकाग्रता प्राप्त शक्तिवान् मस्तिष्क के द्वारा यह कार्य बाह्य तथा भौतिक साधनों के बिना भी केवल संयम द्वारा अन्तर्दर्शन से सहज ही में प्राप्त किया जा सकता है।

एक बार दैत्यों ने , उनके गुरु श्री शुक्राचार्य जी महाराज के समीप मृत संजीविनी विद्या का अध्ययन करने वाले देव-सुत कच को मारकर उसकी भस्म को दैत्य गुरु के सुरापात्र में घोल दिया था। कच के वापिस न लौटने पर जब दैत्य गुरु की कन्या देवयानी उसके लिये विह्वल हुई तो अन्तर्दर्शन की प्रक्रिया द्वारा ही श्री शुक्राचार्य जी ने अपने उदर में स्थित कच का पता लगा लिया था और उसे वहीं मृतसंजीविनी विद्या का सम्पूर्ण उपदेश देकर बार निकाल लिया था।

किसी पूर्ण समर्थवान योगिराज श्री सद्गुरुदेव के अनुग्रह को प्राप्त करके आज भी कोई साधक, सत्कारपूर्वक, निरन्तर तथा दीर्घकाल तक अभ्यास से दृढ़ की हुई संयम शक्ति से अपने तथा दूसरों के शरीर की आन्तरिक रचना तथा स्थिति का सूक्ष्म ज्ञान भी प्राप्त कर सकता है।

''टेलीविजन'' आज तक एक आश्चर्यपूर्ण तथा अनोखा आविष्कार माना जाता है। इस यंत्र

के द्वारा दूरस्थ देश के किसी कार्यक्रम में भाग लेने वाले व्यक्ति का छाया चित्र उसकी वाणी तथा शारीरिक क्रिया-कलाप सहित विद्युत तरंगों की एक विशिष्ट प्रक्रिया द्वारा अन्यत्र दूर देशों में देखे जा सकते हैं। इस आविष्कार ने यह प्रमाणित कर दिया है कि मनुष्य के शरीर का सूक्ष्म-रूप उसके स्थूल शरीर के एक निश्चित स्थान पर रहते हुए भी, विद्युत तरंगों द्वारा भौतिक साधनों से दूर देश में भी पहुँच सकता है और वहां रखा दूसरा टेलीविजन यंत्र एक निश्चित प्रक्रिया द्वारा उसे पकड़कर पुनःवाणी सहित छाया चित्र के रूप में दिखा सकता है यह सिद्धि तो मानव मस्तिष्क ने केवल भौतिक साधनों द्वारा ही प्राप्त कर ली है। किन्तु मनुष्य की आध्यात्मिक तथा योग-शक्तियों का आविष्कार-क्षेत्र तथा गति इन भौतिक साधनों से बहुत आगे परे तथा सूक्ष्म है। यह बात अलग है कि प्रत्येक साधक को यह दक्षता प्राप्त न हो सकें, किन्तु यह बात तो भौतिक विज्ञान पर भी लागू होती है। टेलीविजन का आविष्कर्ता भी तो अरबों मानवों में एक ही व्यक्ति था तथा और आज भी इस भौतिक यंत्र की सुविधा प्रत्येक मानव को प्राप्त नहीं है।

योग शास्त्र में ऐसी तथा इनसे अधिक सिद्धियों तथा शक्तियों का प्राप्त करने के साधनों का वर्णन है। इनमें दूर श्रवण, दूर गमन, दूर चिकित्सा पर चित्त- ज्ञान तथा परकाया प्रवेश तक किया जा सकता है और वह भी भौतिक साधनों की सहायता के बिना।

मानव की इस गुप्त महाशक्ति पर, जिसे सामर्थ्यमान सद्गुरुदेव की कृपा से केवल योग विद्या ही प्रकाशित करती है पहले कम व्यक्ति विश्वास करते थे, किन्तु आज बेतार के तार, रेडियो तथा टेलीविजन के आविष्कार ने शिक्षित समुदाय को भी इस बात पर सोचने तथा विश्वास करने पर विवश कर दिया है कि भौतिक तथा बाह्य उपकरणों की सहायता के बिना भी एक श्रेष्ठ योगी के लिये यह कार्य संयम द्वारा सम्भव है।

प्राचीन ऋषि महर्षियों द्वारा प्राप्त सौर-मण्डल ज्योतिष एवं नक्षत्र सम्बन्धी ज्ञान इस बात की पुष्टि करता है कि हमारे सर्व सामर्थ्यवान ऋषि, इतना कठिन दुर्लभ तथा अनुपम ज्ञान केवल संयम द्वारा अन्तदृष्टि से ही प्राप्त कर लेते थे। योग दर्शन के ये सूत्र **''भुवन ज्ञान सूर्ये-संयमात्'' चन्द्रे तारा-व्यूह ज्ञानम''** तथा **''ध्रुवे तदगति ज्ञानम''** इसी सत्य की प्रस्थापना करते हैं।

भौतिक विज्ञान के उक्त आविष्कारों के सन्दर्भ में इन सूत्रों की सत्यता में सन्देह करने वाला कोई अज्ञानी अथवा मिथ्याभिमानी अथवा अर्ध-विकसित मस्तिष्क वाला ही व्यक्ति हो सकता है।

वैसे यह बात अवश्य है कि भौतिक विज्ञान की तुलना में जिनके अध्ययन में हमें बाह्य इन्द्रियाँ तथा उपकरण सहायता प्रदान करते हैं, वहां योग विज्ञान में यह महती कठिनाई अवश्य है कि इसमें समस्त अध्ययन मानव-मस्तिष्क तथा आत्मा की स्वरुपाव-स्थिति की सूक्ष्मतम अवस्थाओं से सम्बन्धित है। और उसे दीर्घकाल तक, सत्कार पूर्वक निरन्तर अभ्यास से भौतिक तथा बाह्य उपकरणों की सहायता के बिना ही सम्पन्न करना पड़ता है। इसमें अध्ययन का विषय तथा अध्ययनकर्ता दोनों सूक्ष्म हैं। इतने पर भी योग परम श्रेष्ठ विज्ञान है। वह समस्त विज्ञानों का जनक है। सत्य तो यह है कि जहां भौतिक विज्ञान तथा मनोविज्ञान का अन्त है वहां से योग की वर्णाक्षरी प्रारम्भ होती है।

***

"सिद्धयोग-महासागर"

(रचनाकार- कु० रुक्मिणी वर्मा)

१. **हे योगेश्वर तेरी माया, समझ-समझ कोई समझ न पाया।**
इस अवनि पर आकर तुमने, महासागर एक नया बनाया।।
इस महासागर को दुनिया के, कोने-कोने में लहराया।
ज्ञान की गंगा, प्रेम की यमुना, कर्म का संगम इसमें बहाया।।
बोलो तो इस महासागर का, गुरु जी ने क्या नाम धराया?

२. **श्रद्धा** लहरें विश्वास किनारे, **भक्ति का इसमें तल है बनाया।**
भाव की नदियाँ इसमें बहाई, योग का बादल है बरसाया।।
सत्य-अहिंसा के भर मोती, ब्रह्मचर्य का वेग बनाया।
अस्तेय अपरिग्रह का तुमने, इतना कोमल रेत बनाया।।
बोलो इस महासागर का , गुरु जी ने क्या नाम धराया?

३. **शौच-सन्तोष के बिन्दु इसमें, तप का है आधार बनाया।**
स्वाध्याय का लहर लहर में, इसमें मधु तुमने लहराया।।
ईश्वर प्रणिधान के जैसा, एक अनोखा ज्वार बनाया।
आसन की गहराई देकर, प्राणायाम इसमें ठहराया।।
बोलो तो इस महासागर का , गुरु जी ने क्या नाम धराया?

४. **प्रत्याहार की स्थिरता से, इसे शान्त प्रशान्त बनाया।**
धारणा की दिव्य ज्योति भरके, चक्रों में है आन बसाया।।
ध्यान का चन्दा मेरे 'चन्द्र' ने, इस सागर में आन लखाया।
समझ ना आये जो भेद समाधि, उसका ही विस्तार बनाया।।
बोलो तो इस महासागर का, गुरु जी ने क्या नाम धराया?

५. **मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा, दया धर्म ईमान मिलाया**
शुचिता के रस को मथ-मथ के, संयम का अमृत है मिलाया।।
वेद, उपनिषद, स्मृति, भाग्य, छहो शास्त्र प्रमाण बनाया।
पुराण अठारह की शक्ति में, गीता का भी सार मिलाया।।
बोलो तो इस महासागर का, गुरु जी ने क्या नाम धराया?

६. **रामायण की ले मर्यादा, महाभारत अनुभव दरशाया**
योग पतंजलि का शंख बजाकर, योग का डमरू ऐसा बजाया।।
मंत्र जाप श्वासो-श्वासो में, नादयोग, लययोग सिखाया।
खेचरी, मुद्रा, बन्ध, चक्र सब, हठयोग का तप सिखलाया।।
बोलो तो इस महासागर का, गुरु जी ने क्या नाम धराया ?

७. **भवसागर से बिल्कुल न्यारा, महासागर ये ऐसा बनाया।**
ना तूफानी खटके-झटके, भँवर ना इसमें एक बनाया।।
काम, क्रोध की मटकी फूटे, ऐसा जादू है दिखलाया।

ईर्ष्या की अग्नि शान्त हो इसमें, इतना निर्मल नहान बनाया।।
बोलो तो इस महासागर का गुरू जी ने क्या नाम धराया?

८. **मद और लोभ के मैल को धोकर, दान-पुण्य का रंग है चढ़ाया।**
अहंकार का बीज गलाकर, नवधा भक्ति में बदलाया।।
हम पाठक गण मछली इसकी, ऐसा आनन्द अनन्त है पाया।
पीकर अनन्त ज्ञान का पानी, ''अनन्त श्री'' चरणों को पाया।।
बोलो तो इस महासागर का, गुरु जी ने क्या नाम धराया ?

९. **जो मछली बन इसमें रहता, प्यासा कभी ना जीव वो पाया।**
सूखे ना पानी, मरे ना मछली, मुक्ति का साधन बतलाया।।
लीलाधर प्रभु रामलाल ने, लीला का नीला नीर बताया।
योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन ने, लीला के नीर को हमें है पिलाया।।
बोलो तो इस महासागर का, गुरु जी ने क्या नाम धराया ?

१०. **महासागर जब रच दिया पूरा, एक गागर में पूरा समाया।**
गागर माटी धातु की ना, कागज का आकार बनाया।।
मासिक पत्रिका है वो गागर, जिसमें महासागर भर आया।
महायोगी मेरे गुरुदेव ने, संस्थापक बन मान बढ़ाया।।
बोलो तो इस महासागर का, गुरु जी ने क्या नाम धराया ?

११. **संचालन पर प्रथम लेख में, सब लेखक का साहस बढ़ाया।**
प्रभु जी की लीला वर्णन कवि के, प्राण लेख की बन गयी काया।।
क्या विद्वान-विदुषी लेखक, कवि-कवियत्री करते सेवा।
अर्चित कर विज्ञान-ज्ञान में, गोता लगाया और लगवाया।।
बोलो इस महासागर का, गुरु जी ने क्या नाम धराया?

१२. **खुद नहीं चलना पड़ता इस तक, ये ही हम तक चलकर आया।**
चार दिनों की नहीं चाँदनी, साल के हर एक मास में आया।
उल्टी गंगा पहाड़ चढ़ाई, कुँआ ही प्यासों तक पहुँचाया।
सिद्धों की महिमा सिद्ध ही जाने, हमने केवल है बतलाया।।
रुक्मिणी के 'मोहन' ने इसका, सिद्धयोग है नाम धराया।।

जय सिद्धयोग पत्रिका मेरी,
शत-शत है प्रणाम।
तुममें ही स्नान कर,
मिल गये चारों धाम।।
शोक मिटाती है घना,
देती मन आह्लाद।
तेरी सेवा ही मेरा,
बन जाये प्रसाद।।

***

हंसोपनिषत्प्रकाशिनी

(पण्डित श्री मनोहरलाल जी शर्मा)

कुण्डलिनी शक्ति

गुदा के ऊपर कुण्डलिनी शक्ति है, जिसे आधार शक्ति कहते हैं। इसके समीप ही मुर्गी के अण्डे के समान आकार वाला एक मांस-पिण्ड है, जिसे कन्द कहते हैं। इस कन्द से बहत्तर हजार नाड़ियाँ निकलती है। इनमें प्रधान तीन है। मध्य में सुषम्ना नाड़ी, नाड़ी सुषुम्ना के बायी ओर इड़ा नाड़ी और दाहिनी ओर पिंगला नाड़ी है। इड़ा को चन्द्र नाड़ी अथवा गंगा नाड़ी, पिंगला को सूर्य नाड़ी अथवा यमुना नाड़ी और सुषुम्ना को अग्नि नाड़ी अथवा सरस्वती भी कहते है। इड़ा शीतल, पिंगला गरम तथा सुषुम्ना अग्निमय होती है।

इड़ा बाँए नथने से, पिंगला दाँए नथने से तथा सुषुम्ना मध्य से बहती है। ये नाड़ियाँ वायु अथवा प्राण वाहिनी होती है। श्वास इनमें से भीतर बाहर आता जाता है। इन नाड़ियों के माध्यम से प्राण समस्त शरीर में संचार करता है। सुषुम्ना नाड़ी का मुख कुण्डलिनी शक्ति द्वारा अवरुद्ध रहता है।

" कुण्डली प्रकाशमय बिसतन्तु तनीयसी"

(कमल की नाल तोड़ने से बहुत बारीक तन्तु छूटते हैं, उस तन्तु की भांति पतली) शिवलिंग पर साढ़े तीन लपेटे लाये हुए सोती रहती है। वह अपने अधोमुख से सुषुम्ना का द्वार बन्द रखती है। सुषुम्ना नाड़ी ही मूलाधार चक्र से लेकर सहस्त्रदल कमल तक पहुँचती है, अन्य नाड़ियाँ इधर-उधर ही मार्ग में रह जाती हैं। मंत्र अथवा लय अथवा हठ अथवा राजयोग से कुण्डली शक्ति को जगा कर सीधा किया जाता है और पुनः उसे उठाकर सुषुम्ना नाड़ी के मार्ग से ले जाकर सहस्त्रदल कमल स्थित शिव से मिलाया जाता है। इसे ही शिव शक्ति योग कहते है।

शिव शक्ति से परमानन्द की अनुभूति होती है और समाधि लग जाती है। सुषुम्ना नाड़ी मेरुदण्ड में से जाती है। कुण्डलिनी के उर्ध्व मार्ग में छः प्रधान चक्र या शक्ति केन्द्र आते है। मूलाधार चक्र (भू-चक्र) स्वाधिष्ठान चक्र (जल चक्र) मणिपूरक (अग्नि चक्र) अनाहत (हृदय चक्र) विशुद्ध (कण्ठ चक्र) आज्ञा (भ्रूमध्य चक्र), कुण्डली मार्ग में चक्रों को बींधती हुई यानी खिलाती हुई जाती है। इन चक्रो के बेधन से शरीर निरोग हो जाता है और साधक को नाना प्रकार की सिद्धियां उपलब्ध होती है। कुण्डलिनी के शिव के प्रति गमन को आरोहण क्रम कहते है पुनः कुण्डली उसी मार्ग से वापिस आकर गुदा में ऊपर शयन करती है। कुण्डली के नीचे उतरने को अवरोहण क्रम कहते हैं, और ऊर्ध्वगत कुण्डली मोक्ष का हेतु है। प्रसंगवश यहां सूक्ष्मता से बताया है। हंस मंत्र से कुण्डली जागृत होती है और उर्ध्व मुख होकर सहस्त्रार में शिव से युक्त होती है।

कन्दोर्ध्वे कुण्डली
शक्तिरष्टधा कुण्डलाकृतिः।
बंधनाय च मूढानां
योगिनां मोक्षदा सदा।।

कंद से ऊपर अष्ट प्रकृति वाली भगवती कुण्डली कुण्डलाकार हुई बिराजती है। सुप्त कुण्डली मूढ़ों के लिए बन्धनकारी है और उर्ध्वमुखी कुण्डली योगियों के लिए मोक्ष का कारण है। ब्रह्म का

प्रथम स्फोट ओंकार है, ओंकार से घोष, घोष से नाद की उत्पत्ति है। यहां हमने संग्रह रूप से कहा है। नाद दो प्रकार का होता है, ध्वनि रूप तथा वर्णात्मक, ध्वनि अस्पष्ट, वर्ण स्पष्ट। नाद से प्राण की उत्पत्ति है, ओंकार की ज्योतिर्मयी ध्वनि नाद है। ब्रह्म, ओंकार ही श्रृंखला परम्परा से प्राण बनता है।

हंसः मंत्र का अर्थ

हंसः मंत्र प्राण मंत्र है। एक ही प्राण कार्य भेद और निवास स्थान भेद से पांच प्रकार का होता है- प्राण, अपान, समान, व्यान तथा उदान। प्राण वायु हृदय में निवास करता है और अपान वायु गुदा में निवास करता है और अपान वायु शरीर के विष को आकर्षित करके बाहर फेंकता है। जो श्वास नासापुट में से भीतर से बाहर की ओर निकलता है उसे भी अपान (हं) कहते है। जो श्वास बाहर से भीतर जाता है उसे प्राण (सः) कहते है। हं तथा सः इन दो अक्षरों से मिलकर हंसा मंत्र बना है। हंसा प्राण का मंत्र है।

हं का अर्थ अपान वृत्ति और सः का अर्थ है प्राण वृत्ति। जब श्वास भीतर से बाहर निकलता है तो हकार की ध्वनि करता है और नासिका के सम्बन्ध से उस पर अनुस्वार आ जाता है अतः हं की ध्वनि करता है। श्वास जब बाहर से भीतर जाता है तो सः की ध्वनि करता है। अतः हंस मंत्र प्राण अपान का द्योतक है। कोई भी एकाग्र चित्त होकर शून्यागार दीप रहित स्थान की सूक्ष्म ध्वनि को सुन सकता है। जनम से लेकर मरण पर्यन्त प्राण अपान की खींचातानी चलती रहती है। प्राण को अपान खेंचता है तब श्वास भीतर जाता है और अपान को प्राण खींचता है तब श्वास बाहर निकलता है। यदि अपान प्राण को न खेंचे तो प्राण ऊपर ही रहे यानी नथनो में प्रवेश न करें। प्राण की स्वाभाविक गति ऊर्ध्व है और अपान की गति अधः है दोनों के विपरीत गतियां है अपान को जब प्राण ऊपर को खेंचता है तो अपान का विष उसमें मिल जाता है तथा प्राण की शोधक और जीवनी शक्ति अपान में मिल जाती है। यद्यपि इनकी विरुद्ध गतियां है तो भी एक दूसरे के बिना नहीं रह सकते। न प्राण के बिना अपान रह सकता है और न अपान के बिना प्राण। जब काल वश इनकी गति रूक जाती है, तो मनुष्य उसे शव घोषित कर देते है। न प्राण को विश्राम है और न ही अपान को। इनके पारस्परिक, आकर्षण-विकर्षण से खिन्न हुआ जीव नाचता रहता है। जैसे रज्जु से बधा श्येन, बाज पक्षी उड़ने की चेष्टा करता है परन्तु रज्जु से पुनः खेंच लिया जाता है, वैसे ही यह प्राण ऊर्ध्व अधः आता जाता है।

योग चूड़ामणि उपनिषद् में जीव की दुर्दशा हृदयग्राही मंत्रों में लिखी हैं:

आक्षिप्तो भुजदण्डेन
यथा चलति कन्दुकः।
प्राणापान समाक्षिप्त
स्तथा जीवो न तिष्ठति।।
प्राणापानवशो जीवो
ह्यधश्चोर्ध्व च धावति।
वामदक्षिणामार्गाभ्यां
चन्चलत्वन्न दृश्यते।।
रज्जु बद्धो यथाश्येनो

गतोऽप्या कृष्यते पुनः।
गुण बद्धस्तथा जीवः
प्राणापानेन कर्षति।।
प्राणापानवशो जीवों
ह्यधश्चोर्ध्वं च गच्छति।
अपानः कर्षति प्राण
प्राणोऽपानं च कर्षति।।
ऊर्ध्वाधः संस्थितावेतौ
यो जानाति स योगवित्।।

हाथ से फेंकी हुई रबर की गैंद जैसे ऊपर उछलती है, पुनः नीचे आती है, फिर उछलती गिरती है, उसी प्रकार प्राणापान से नचाया हुआ जीव चंचल रहता है, विश्राम नहीं पाता।

प्राणापान के वशीभूत जीव कभी ऊपर दौड़ता है (मोक्षोन्मुख होता है) कभी नीचे गिरता है (भोगोन्मुख होता है)। इड़ा (वाम) पिंगला (दक्षिण) नाड़ियों में प्राण संचार से, चंचलता के कारण जीवात्मा को परमार्थ नहीं दिखाई पड़ता। जैसे जिस बाज पक्षी के पांव में रस्सी बांध दी जाती है वह उड़ता तो है परन्तु रस्सी की लम्बाई जितना ही उड़ सकता है, पुनः रस्सी से खैंच लिया जाता है, वैसे ही त्रिगुणों (वासनाओं) से बंधा जीव प्राण- अपान से खींचा जाता है अर्थात् उसको स्थिरता प्राप्त नहीं होती। प्राण अपान से जकड़ा हुआ जीवात्मा ऊपर नीचे भटकता है। अपान प्राण को खींचता है और प्राण अपान को खींचता है। प्राण ऊपर हृदय में निवास करता है। इस रहस्य को यानी प्राणापान की साम्यावस्था को जो जानता है वह योग वेत्ता है।

श्वेताश्वतार उपनिषद् के प्रथम अध्याय में हंस के भटकने की तथा उसके विश्रान्ति की वार्ता आई है-

सर्वाजीवें सर्वसंस्थे बृहन्ते,
अस्मिन्हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे।
पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा,
जुष्टस्ततस्तेमामृतत्वमेति।।

जिसमें सर्व प्राणी आजीवन निवास करते हैं, जिसमें सर्व प्राणधारी संस्था, समाप्ति, प्रलय को प्राप्त होते है, उस महान ब्रह्मचक्र में हंस जीवात्मा भटकता रहता है। हंस उसे कहते है जो संसार मार्ग में भ्रमण करता हो यानी जीवात्मा अपने कर्म और ज्ञान के अनुसार चौरासी लाख योनियों में जन्मता है, मरता है। क्यों ? इसलिये कि वह जीवात्मा और परमात्मा में भिन्नता जानता है और देह में उसकी सत्यत्व बुद्धि होती है। किस उपाय से वह मुक्त होता है यानी उसे विश्राम मिलता है? परमात्मा से सेवित होने पर यानी अपने को परमात्मा से अभिन्न जानने पर मैं ही सच्चिदानन्दघन परिपूर्ण परमात्मा हूं, इस प्रकार परमात्मा से तादात्म्य प्राप्त करने पर वह हंस अमृत्व को प्राप्त होता है। अर्थात उसका आवागमन छूट जाता है। हंस की परमहंस से अभिन्नता सिद्ध होने पर वह मुक्त होता है।

विपरीत गति होते हुए भी प्राणापान साम्यावस्था रूप विश्राम चाहते हैं।

हंस मंत्र की साधना से प्राण-अपान की साम्यावस्था सिद्ध होती है। प्राण की दो गतियाँ है-

कालगत और देशगत्। कालगति के सम्बन्ध में पहले कुछ कह चुके है। एक दिन रात में इक्की हजार छः सौ श्वास जीव लेता है यानी हंसः मंत्र का जप करता है। एक मिनिट में १५ बार हंसः का जप करता है।

हंसः मंत्र की साधना से श्वास की प्रति मिनिट संख्या घट जाती है, ज्यों-ज्यों संख्या घट जायेगी त्यों-त्यों विश्राम मिलता जायेगा और दीर्घाभ्यास से जब यह गति रुक जायेगी तब कुम्भ सिद्ध हो जाता है। उस काल में समाधि सुख मिलता है। देशगत प्राणगति के सम्बन्ध में भी बत है। श्वास जब बाहर निकलता है तो नथनों से बारह अंगुल तक जाता है। पुनः वायु मण्डल में बाहर अंगुल तक जाता है। पुनः वायु मण्डल में विलीन हो जाता है। धुनी हुई बारीक रुई को य नाक से बारह अंगुल की दूरी पर रखा जाय तो वह श्वास त्यागने के प्रभाव से हिलती है। श्वास देशगत लम्बाई मापने का यह तरीका है। विशेष-विशेष अवस्थाओं में जैसे भागने, दौड़ने तथा स प्रसंग समय श्वास की लम्बाई बढ़ जाती है। घेरण्ड संहिता के चतुर्थोपदेश में से प्रमाण देते हैः-

देहाद्वहिर्गतो वायुः
स्वभावो द्वादशांगुलि।
गायने षोडशांगुल्या
भोजने विंशतिस्तथा।
चतुर्विंशांगुलि प्रस्थे
निद्रायां त्रिशदंगुलिः।
मैथुने षटत्रिंशदुक्तं
व्यायामे च ततोऽधिकम्।

नासिका से निकला हुआ वायु साधारणतः १२ अंगुल लम्बा होता है, गाते समय इसकी लम्ब १६ अंगुल हो जाती हैं, भोजन के समय इसकी लम्बाई २० अंगुल होती है, मार्ग चलने में इसक लम्बाई २४ अंगुल होती है नींद में ३० अंगुल, मैथुन में ३६ अंगुल और व्यायाम में इसकी लम्ब और भी अधिक हो जाती है।

स्वभावेऽस्य गते न्यूनं
परमायुः प्रवर्द्धते।
आयुः क्षयोऽधिके प्रोक्तो।
मारुते चान्तराद्गते।।

श्वास की स्वाभाविक देश गति १२ अंगुल होती है, इससे कम होने पर आयु बढ़ती है औ अन्तरश्वास अधिक चलने से आयु घटती है।

तस्मात्प्राणे स्थिते देहे
मरणं नैव जायते।
वायुना घट-सम्बन्धे।
भवेत्केवल कुम्भकम्।।

जब तक हृदय-देश में यानी सुषुम्ना नाड़ी में प्राण रहेगा तब तक मृत्यु नहीं होती। अत देह-स्थित प्राण की रक्षा के लिए प्राण पवन का केवल कुम्भक प्राणायाम ही उपाय है। ***

भाव-प्रसून

-श्रीमती सरिता भारद्वाज-

यह सिद्ध गुफा का धाम सँवाई ग्राम,
कि सब गाँवन से न्यारौ।
मैं कैसे करूँ बखान कि इसकी शान,
कि जामें मोहन सहिबे वारो।।
मँडराते आएँ विरक्त अनेकों भक्त,
कि योगिन की भीड़ है भारी
प्रांगण में बैठे मस्त अनेकों भक्त,
कि हो रही योग की वर्षा भारी।।

मोहन बैठे प्रभु धाम, कदम की छाँव
जुड़ी भक्तन की भीड़ है भारी
मेरे गुरुवर दे रहे ज्ञान, लग रहे ध्यान,
कि खुल रही योग की गठरी सारी।।
कोई आवै सीखने योग भगाने रोग,
कि योगी कुछ पाने आवैं।
जो जैसी लेकर चाह, बढ़ें निज राह,
गुरु से सब मन की पावै।।

✣

महा अवतार के अवतार प्रभु रामलाल,
जग को दिया है चन्द्रमोहन सा प्यारा लाल।
रूप रस माधुरी और ज्ञान की पिपासा देखि,
खोलि गाँठि योग की किया है प्रभु मालामाल।
आओ मेरे राज तुम पहिनो यह मेरा ताज,
बन जाओ योगीराज कहा प्रभु रामलाल।
आशिष अमोघ दीन्हा सब कुछ सौंप दीन्हा,
चाबी दीन्ही योग की गुरु को प्रभु रामलाल।।

✣

नेपाल धाम से आय प्रभुजी,
धाम सँवाई बसाए है।
सब गाँवन से देखि अलौकिक,
योग की ज्योति जलाए है।

त्रिकालज्ञ ने देखि सतगुरु,
योगामृत बरसाए हैं।
योग ज्योति संवर्द्धक गुरुवर,
सब में अनुपम पाए हैं।
सिद्ध गुफा निर्मित कर गुरुवर,
अपनी शक्ति रमाए हैं।
उसका रज कण दिव्य अलौकिक,
नाना रोक भगाए हैं।
ऐसा परम धाम है पावन,
जो कोई उसमें आए है।
भव बन्धन को काट पथिक वह,
सच्चा योगी बन जाए है।

❖

मोहिनी मूरति मोहन की सखि,
नयनन में प्रभु की छवि देखी।
ज्योतिर्पुंज सा रूप अलौकिक,
चन्द्र सा हास लिए जब देखी।
बारहि बार निहारत ऐसे,
मानो हृदय में प्रीति विशेषी।
कासे कहूँ बलि जाऊँ सखि यदि,
पल पल छिन छिन रूप जो देखी।

**

विषयों को भोगने से नरकाग्नि में जलोगे और जन्म-मरण के घोर संकट सहोगे; परमात्मा के भजन या योगसाधन से नित्य सुख भोगते हुए परमानन्द में लीन हो जाओगे। अतः इन्द्रियों को वश में करो और एकाग्रचित्त से परमात्मा का भजन करो।

श्री कृष्ण जन्म सद्शिक्षा के साथ

श्री कृष्ण जन्म सद्शिक्षा के साथ

लेखक-राजेश कुमार श्रीवास्तव

गतांक से आगे/समापन कड़ी

महात्मा संजय भगवान श्री कृष्ण का प्राकट्य वृतान्त सुनाने के बाद महात्मा धृतराष्ट्र जी से बोले-

हे राजन ! योगेश्वर श्री कृष्ण के परमानुग्रह तथा वेद व्यासजी के आशीर्वाद से मैं तुम्हें भगवान की यह सुन्दर लीला सुना सका हूँ। तुम्हें यह लीला कितना आनन्द पहुँचा सकी ? मैं यह सुनना चाहता हूँ। क्या भगवान की महिमा, उनके स्वरूप और जन्म-उद्देश्य को समझ लेने के बाद भी क्या आप अपने संकल्प पर अडिग बने रहेंगे ? आप चाहें तो युद्ध को रुकवा सकते हैं।

भगवान श्री कृष्ण की जन्म लीला को सुनकर राजा धृतराष्ट्र के नेत्र सजल हो उठे साथ ही कुछ चिन्ता की रेखाएँ उनके ललाट पर उभर आयीं थी। अपने पुत्र दुर्योधन के प्रति बहुत चिन्तित थे। वह उनकी बात को स्वीकार करना तो बहुत दूर, सुनना भी नहीं चाहता था। भगवान की शिक्षाप्रद जन्म लीला को महात्मा संजय के मुख से सुन लेने पर उन्होंने माता-पिता के अपने बच्चों के प्रति कर्तव्यों को जाना। उन्हें यह महसूस हो रहा था कि उन्होंने दुर्योधन के भविष्य के साथ धोखा किया है। उसके लालन-पालन में असावधानी बरतकर तथा उससे अपना मोह बढ़ा कर उन्होंने उस पर बहुत अत्याचार किया है। वे बड़े ही शान्त शब्दों में संजय से बोले मेरे प्रिय संजय ! तुमने भगवान की जन्म लीला सुनाकर मुझ पर बहुत उपकार किया है। यह योगेश्वर श्री कृष्ण की कृपा ही है कि मुझे उन्हें समझने का अवसर प्राप्त हुआ साथ अपने दोषों को देखने का अवसर प्राप्त हो गया है। अब तक मैं दूसरों में ही सदा दोष ढूँढा करता था अब मुझे स्वयं के अन्दर अनन्त दोष दिखलायी पड़ रहे हैं। हे महात्मा ! एक बात मैं तुमसे पूछना चाहता हूँ-युद्ध होना, न होना यह केवल दुर्योधन के निर्णय पर निर्भर है यदि वह अपने अड़ियल स्वभाव में परिवर्तन नहीं करता है और युद्ध को बढ़ावा देता है तो क्या मुझे सद्गति प्राप्त नहीं होगी ?

महात्मा संजय कहने लगे-नहीं राजन, नहीं तुमने भगवान की लीला को श्रद्धापूर्वक श्रवण किया है। भगवान कृष्ण के प्रति तुम्हारे मन में सम्मान और प्रेम की भावना है। अतः अन्तिम श्वासों के क्षणों पर तुम्हें इसका लाभ सद्गति के रूप में अवश्य प्राप्त होगा। किन्तु तुम क्या यह जानकर भी अपने मन में युद्ध की भावना रखोगे, राजन् ? दुर्योधन को आप समझाते क्यों नहीं कि वह व्यर्थ का हठ छोड़ शान्ति और प्रेम का जीवन व्यतीत करे यही उसके लिए हितकर है।

मेरे प्रिय संजय ! दुर्योधन की इच्छा के बिना मेरे द्वारा युद्ध रोक पाना सम्भव नहीं। सारी दुनिया की तरह तुम भी इसे मेरा अन्धा पुत्र मोह कह सकते हो। किन्तु एक बात मेरे हृदय में बार-बार उठती है कि युद्ध कराना स्वयं भगवान श्री कृष्ण की ही 'इच्छा' है। उनकी इच्छा को भला कौन टाल सकता है। उनकी इच्छा बिना संसार में कुछ नहीं होता वे चाहें तो तत्काल मेरा मोह भंग कर दें

22 सिद्धयोग

और दुर्योधन की बुद्धि में सुधार कर दें। मैं तो बहुत चाहता हूँ कि परमात्मा मेरे पुत्रमोह को नष्ट कर दें किन्तु योगेश्वर श्री कृष्ण सबके परमधान ऐसा नहीं करना चाहते इससे यह सिद्ध होता है कि युद्ध कराना भगवान श्री कृष्ण की ही इच्छा है।

हे महात्मा संजय ! मैं यह जानता हूँ कि धर्म की स्थापना हेतु 'युद्ध' समय की माँग बन चुका है समय की माँग के अनुसार चलाना मानव का धर्म है। समय के विरुद्ध चलने वाला अपने लिए व्यर्थ की परेशानियाँ-चिन्तायें एकत्रित कर लेता है। योगेश्वर श्री कृष्ण का तो जन्म ही महाभारत जैसा महान और विशाल युद्ध कराने के लिए हुआ है।

संजय बोले-

-तुम बिलकुल ठीक कह रहे हो, राजन ! 'युद्ध' भगवान की इच्छा ही है। मैं तुम्हारे मुख से यही सुनना चाहता था। देखो, राजन् ! विवेक जैसा दैवीय गुण ईश्वर की महान कृपा से प्राप्त होता है जो लोग दूसरों को कष्ट पहुँचाने में अपने बुद्धिबल का दुरुपयोग करते हैं वे लोग दैवीय प्रकृति के होते हुये भी कुसंग के कारण राक्षसी, आसुरी और अज्ञान मय वृत्तियों वाले होते हैं अपने स्वार्थों के कारण वे अपनी अन्तः शक्ति (आत्म शक्ति) तथा विवेक शक्ति का दुरुपयोग करने लगते हैं। लोग अपने अहंकार के कारण ज्ञानियों की ज्ञानपरक बात नहीं सुनते। इन लोगों के लिए ही परमात्मा 'युद्ध' की रचना करता है। अनेक शक्तियों से सम्पन्न कोई विवेकवान जब ईश्वरीय नियमों का उल्लंघन करता है। 'युद्ध' उसके लिए दण्डस्वरूप है दुष्ट सभी युद्ध में मारे जाते हैं; जो शेष बचते हैं वे भगवान का सहारा लेकर अपने विवेक का सदुपयोग करते हैं और धर्म की स्थापना में सभी जुट जाते हैं।

धृतराष्ट्र बोले-

-हे संजय ! मैंने सज्जनों से सुना है कि अहंकार युक्त लोहे की भाँति सख्त (कठोर) हो जाती है तब इसे गलाने के लिए जैसे लोहे को अग्नि में तपाते हैं उसी प्रकार इसे 'युद्ध' रूपी कष्टकारी अग्नि में तपाते हैं क्योंकि अहंकारी लोग धर्मसम्मत बात को वाणी व आचरण से नहीं स्वीकार करते, समय की भयंकर मार के बाद ही वे कुछ समझने के योग्य बन पाते हैं। आपके कहने का अर्थ भी यही है इससे अब मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है कि युद्ध को कराने की श्री कृष्ण की इच्छा है।

हे संजय ! इस त्रेता युग में जब 'मानव का कल्याण' युद्ध की विनाशकारी परिणाम में ही निहित है तो मैं युद्ध रोकने की चेष्टा क्यों करूँ ? लाखों-करोड़ों लोगों को अर्जुन के बाणों से मिलने वाली सद्गति को रोकने का अपराध मैं भला क्यों करूँ। हे संजय! सूर्य चन्द्रपर्यन्त तक दुनियाँ मेरे और दुर्योधन के नाम को कितना भी कलंकित क्यों न करे किन्तु मेरे मन में इस बात का कोई दुःख नहीं है क्योंकि हमारे दुर्गुण भी ठीक से देखा जाय तो, भगवान श्री कृष्ण के धर्म हेतु धरती पर अवतरित होने के उद्देश्य को पूर्णता देने में सहयोगी हैं। हमारे अस्तित्व के अभाव में महाभारत की पूर्णता सम्भव नहीं है।

हे संजय यदि युद्ध हुआ तो करोड़ों लोग इसमें मरेंगे किन्तु सारी मानव जाति को यह शिक्षा तो मिल ही जायेगी कि मोह आदि मानव की वृत्तियाँ कितनी भयंकर और विनाशकारी होती हैं।

मिल ही जायेगी कि मोह आदि मानव की वृत्तियाँ कितनी भयंकर और विनाशकारी होती हैं।

बुद्धि बिगड़ जाने के बाद उसमें सुधार की कोई गुन्जाइश नहीं रहती। हे संजय ! कुसंगति में दुर्योधन का विवेक नष्ट हो चुका है। राज्य के बलाभिमान की आँखें ही उसके पास रह गयी हैं जो केवल मद के उजाले में ही देखना जानती हैं। विवेक में कर्म हेतु अच्छा-बुरा विचारने की स्वतन्त्रता होती है किन्तु मद में हितविचार से रहित कर्म करने की 'मनमानी' होती है।

मेरे प्रिय संजय ! केवल तुम ही मेरा दुःख समझ सकते हो। दुर्योधन की दुर्गति के विषय में कुछ भी कहने से पहले मैं शर्मिन्दिगी से भर जाता हूँ। मेरी आत्मा मुझे धिक्कारती है। युद्ध में पराजय को लेकर मैं इतना भयभीत और चिंतित नहीं हूँ जितना कि अपने अपराध बोध से हूँ।

मेरे व गान्धारी के अत्यधिक मोह तथा शकुनि की कुसंगति ने दुर्योधन के जीवन को बर्बाद कर दिया। शुरू से ही दुर्योधन के जीवन में अनुशासन तथा सुसंगति का अभाव हो गया जिसने मेरे दुर्योधन को दुर्योधन नहीं रहने दिया।

विवेक नष्ट होते ही ज्ञान से हीन बुद्धि जड़ता को प्राप्त हो जाती है। दुर्योधन जड़बुद्धि हो गया। मैं उस दिन बहुत गहरे शोक-सागर में डूब गया था जिस दिन मेरे पुत्र ने सबके ईश्वर श्री कृष्ण के सर्वहितकारी शब्दों का भी सम्मान नहीं किया। उस दुर्बुद्धि ने भगवान का परामर्श भी ठुकरा दिया और मदभरे अहंकार युक्त शब्दों में कह दिया-

''हे केशव ! मैं बिना युद्ध के सूई की नोंक भर भी जगह पाण्डवों को नहीं दूँगा। प्रत्युत्तर में भगवान श्री कृष्ण क्रोध से आँखे लाल करके मुस्कराते हुये बोले-''अच्छा ! ठीक है दुर्योधन तुम जैसा चाहोगे वैसा ही होगा।'' हे संजय सुनो ! कुछ लोगों ने बताया कि उस समय श्री कृष्ण मुस्कुरा रहे थे, शायद इसीलिए कि दुर्योधन ने स्वयं ही उनके मन की बात कह दी थी।

हे संजय ! मैंने कई बार ठीक दिशा में कार्य करने का प्रयत्न किया किन्तु मेरा पुत्र मोह तुरन्त मुझे धर्म विरुद्ध मार्ग पर बहा ले गया। सन्तानोत्पत्ति के बाद हमने अपने बच्चों को उचित संस्कार और पवित्र व शान्त वातावरण प्रदान नहीं किया। इसी बात का दण्ड मैं व गान्धारी आज तक झेल रहे हैं।

महात्माओं का मैंने सदा आदर किया है। वयोवृद्ध भीष्म पितामह, महात्मा विदुर व ऋषि वेदव्यासजी आदि सन्तों में मेरी सदा भक्ति रही है। किन्तु एक दुर्योधन के कारण इनकी उचित आज्ञाओं का पालन भी नहीं कर पा रहा हूँ इतने पर भी ये सभी महात्मा मेरा हित चाहते हैं। मेरा दुर्भाग्य देखो संजय ! कहते-कहते धृतराष्ट्र बिलख-बिलख कर रोने लगे। गीले नेत्रों से वे बोले 'हे संजय ! मैं अपने हितैषी मित्रों-बान्धवों को अपना नहीं सका अपने पुत्रमोह और दुर्योधन की वासना के कारण उन्हें खोकर बहुत पाप कमाया है। भाई विदुर तो मेरी दुर्दशा को देख कर अत्यन्त चिन्तित एवं शोकाकुल रहते हैं विदुर जी का स्मरण आते ही कण्ठ पुनः भर आया-संजय ! भाई-बहिनों में बचपन में कितना गहरा और मीठा प्यार होता है। विदुर जी शुरू से ही मुझसे हितकारी प्रेम करते हैं। मेरे अन्धेपन के कारण वे मुझे दीन जानकर मेरे अपराधों को तुरन्त क्षमा कर देते थे। किन्तु हे महात्मन् ! दुर्योधन ने उनको भी नहीं छोड़ा। उन्हें भरी सभा में अपशब्द कह कर अपमानित किया। महात्मा विदुर उसी दिन से मुझे अकेला छोड़कर चले गये। सब चले गये। एक वायदा करो संजय,

24 सिद्धयोग

तुम मुझे कभी मत छोड़कर जाना, तुम सदा मेरे पास ही रहना। मेरा हृदय बहुत घबराता है। कभी मन में बहुत आता है कि मैं युद्ध रोकने की घोषणा कर दूँ और पाण्डवों को उनका राज्य लौटा दूँ किन्तु दुर्योधन मुझे करने नहीं देगा वह हमेशा के लिए मुझे ठुकरा देगा, मैं व गान्धारी उससे प्रबल मोह करते हैं उससे अलग हम कैसे रह पायेंगे ? युद्ध में यदि दुर्योधन जीवित नहीं रहा तो हमारा इस संसार में तुम्हारे सिवाय कौन रह जायेगा ? दुर्योधन ने महात्माओं में श्रेष्ठ विदुर का अपमान किया है। ईश्वर कैसे क्षमा करेगा इसको ? संजय मैं तुम्हें छोड़ना नहीं चाहता। तुम मेरे परम हितैषी हो। कोई सबको घर से निकाल दे किन्तु अपने महात्मा सम मित्र को कभी कोई न ठुकरावे। बड़े भाग्य से किसी को संत-महात्मा की संगति होती है। अतः संजय हम पर दया रखना।

तब महात्मा संजय बोले आप चिन्ता मत करो राजन् मैं सदा तुम्हारे ही साथ रहूँगा। आप धैर्य रखिये। संजय ने देखा कि बैचेन धृतराष्ट्र बड़े शान्त होकर किसी गहरे सोच में डूब गये हैं।

संजय बोले-

राजन् ! आप इतनी गम्भीरता से क्या सोच रहे हैं ? तब धृतराष्ट्रजी ने गहरी श्वांस खींचते हुये कहा-महात्मा संजय ! मैं सोच रहा हूँ कि जब मेरा मोह मुझे इतना पीड़ित कर रहा है तो कलिकाल के भोले लोगों की क्या दशा होगी ? घोर कलिकाल अज्ञानान्धकार का अथाह सागर होगा। हर मनुष्य काम, क्रोध, मद, लोभ व मोह के वशीभूत होगा। धर्म की कहीं झलक मात्र भी दिखलायी नहीं देगी। हे संजय ! अपने दुःख की अनुभूति से ही पराये दुःख का अहसास होता है। तभी मन में दूसरों के प्रति स्वाभाविक दया, क्षमा और पुरुषार्थ-प्रेम का अनुकरण होता है।

योग विद्या से हीन होना और धर्म की रक्षा न करना बल्कि अधर्म को बढ़ावा देना, इन दो कारणों से मनुष्य स्वयं तो दुःख झेलता ही है दूसरे तमाम निर्दोष लोगों को भी उनकी वजह से दुःख उठाना पड़ता है। अतः मैं योगेश्वर श्री कृष्ण जो सबके रक्षक हैं के पतित पावन चरण-कमलों में निवेदन करता हूँ कि-

हे नारायण ! हे योग विद्या के धनी सद्गुरु, हे मर्यादा पुरुषोत्तम ! अब की बार जब आप कलिकाल में प्रकट हों तो रावण को नष्ट करने, कंस का वध करने के लिए अवतरित मत होना। पुनः योगमाया द्वारा भयंकर युद्ध कराने के लिए जन्म मत लेना। कलियुग में हर घर में कंस और रावण होंगे। हे परम पिता ! अब की बार तुम जन-जन के कल्याणार्थ अपनी योग विद्या के समस्त ऐश्वर्य से युक्त होकर, समग्र विश्व के गुरु बन कर, प्रेमपथ दिखाने वाली योग विद्या सिखाने हेतु जन्म लेना।

हे प्रभु ! इस बार युद्ध हेतु किसी क्षत्रिय वर्ण में जन्म मत लेना, जगत को ज्ञान के प्रकाश में सराबोर करने के लिए ब्राह्मण वर्ण में जन्म लेना अपने हाथों में धनुषबाण और चक्रसुदर्शन नहीं, इस बार वेद-पुराण, उपनिषद-स्मृति, पतञ्जलि एवं व्यास भाष्य, और सहस्र गंगाओं से भी अधिक पवित्र परम कल्याणमयी श्रीमद्भगवद्गीता को धारण करके प्रकट होना। महायोगियों के भी ईश्वर हे सर्वशक्तिमान प्रभु ! कलिकाल के उत्थान हेतु आप स्वयं ही जन्म लेना। ***

...प्रभु ! कलिकाल के उत्थान हेतु आप स्वयं ही जन्म लेना। ***

दे दो अपनी कृपा का दान

विद्यारण्य भारद्वाज, दिल्ली

करुणा पुंज निधान! मेरे सद्गुरु देव महान!
तुम ही तात, पिता महतारी हो,
दीन-दुःखियों के उपकारी हो।।
सब के घट-घट वासी हो,
तुम ही मथुरा और काशी हो।।
शिव स्वरूप कैलास निवासी हो,
तुम ही अनन्त अविनाशी हो।।
तुम ही सबमें सबके तुम ही,
प्राणेश्वर! आनन्द निधान! मेरे सद्गुरुदेव महान।।
अलख निरंजन ब्रह्म लखाते,
जीव ब्रह्म का भेद मिटाते।
निज स्वरूप का बोध कराते,
ध्यान योग से आवागमन मिटाते।
जो भी तुम्हारी शरण में आते,
सहज समाधि को वे पाते ।।
प्रभु रामलाल के जीवन सर्वस्व! मेरे सद्गुरुदेव महान।।
शक्तिपात के दिव्य दिवाकर,
सिद्धयोग के हे योगेश्वर।
जीवन-ज्योति जला दो गुरुवर।
सिद्धगुफा के हे सिद्धेश्वर।
प्रभु राम लाल के प्रिय प्राणेश्वर,
हे हृदयेश्वर! हे अखिलेश्वर।
इस चकोर के तुम्हीं चन्द्र हो,
तुम्हीं कृष्ण और राम चन्द्र हो।
दे दो अपनी कृपा का दान, मेरे सद्गुरुदेव महान।।

बहन जामवन्ती पर गुरुदेव कृपा

प्रेषक : श्रीमती सुमंगला देवी उपाध्याय

विजयादशमी के तत्काल बाद सन् उन्नीस सौ इक्यासी बयासी में आराध्यदेव महाराज जी ने राजधानी दिल्ली में अपना यौगिक प्रचार कार्यक्रम किया था। श्री गुरुदेव भगवान की इच्छा यह थी कि दिल्ली का यौगिक प्रचार कार्यक्रम समाप्त करके, अमृतसर का यौगिक प्रचार-प्रसार कार्यक्रम सम्पन्न करूँ एवं फिर उसके बाद अमृतसर शहर से सीधे श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र संवाई आश्रम आकर दीपावली का पर्व मनाऊँ। श्री गुरुदेव भगवान की इसी इच्छानुसार उनका तथा उनके साथ यात्रा करने वाले साधकों का थ्री टायर में रिजर्वेशन दिल्ली से अमृतसर का तथा अमृतसर से सीधे टूण्डला जंक्शन का कराया गया था। नई दिल्ली से अमृतसर जाने वाली जिस ट्रेन में गुरुदेव भगवान का रिजर्वेशन कराया गया था, उसके प्रस्थान (दिल्ली से छूटने का समय) प्रातःकाल साढ़े नौ बजे का था। आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेव जी महाराज ने अपने सायंकालीन प्रवचन के समय ही अपने मुखारविन्दु से यह जानकारी दी थी कि कल प्रातः काल श्री प्रभु जी की आरती हम प्रातः सात बजे करेंगे एवं उसके पश्चात सामान समेटकर रेलवे स्टेशन को निकल पड़ेंगे। उसी समय हमारी एक आदरणीया गुरु बहन जिनका नाम श्रीमती जामवन्ती देवी है ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि-महाराज जी ! यदि आपकी आज्ञा मिले तो मैं पवित्रता के साथ खाना बनाकर लेती आऊँ। श्री गुरुदेव भगवान ने कहा कि नहीं लल्ली ! परेशान होने की कोई जरूरत नहीं है। उसने फिर प्रार्थना किया कि महाराज जी ! इसमें परेशानी की रंचमात्र भी बात नहीं है। आप तो केवल अपनी स्वीकृति प्रदान करने की कृपा करें। उसके बाद जैसी स्थिति बनेगी मैं वैसा करूँगी। श्री गुरुदेव भगवान ने अपनी मनोहारी मुस्कान के साथ उसे देखा एवं बोले-'तुम्हारी जैसी इच्छा हो वैसा ही करना।' इसके बाद जामवन्ती देवी ने श्री गुरुदेव भगवान के चरणों में अपना सिर रखकर प्रणाम किया एवं उनसे आशीर्वाद प्राप्त कर अपने घर के लिए प्रस्थान किया। श्रीमती जामवन्ती देवी रास्ते भर सोचती एवं चिन्तन करती जा रही थी कि घर जाकर पूरी शुद्धता, पवित्रता एवं श्रद्धा के साथ श्री गुरुदेव जी एवं उनके पार्षदगणों का भोजन तैयार करूँगी एवं उसे लेकर ट्रेन छूटने से आधा घण्टे पहले ही स्टेशन पहुँचकर श्री महाराज जी को अर्पित करूँगी। इसी का चिन्तन करते-करते वह अपने मकान पर पहुँच गयी। घर जाकर वह रात भर सोयी नहीं। वह अच्छे अग्रवाल परिवार की विधवा महिला थी। इनका लड़का दूसरे शहर में अपनी पत्नी के साथ रहकर सरकारी नौकरी करता था। तथा दो लड़कियाँ अपनी-अपनी ससुराल में अपने पतिदेव एवं बच्चों के साथ सानन्द निवास कर रही थी। यद्यपि इन सबों का अपनी विधवा माताजी के प्रति अपार प्रेम एवं आदर था। परन्तु कर्म संस्कारवशात् इसे दिल्ली के अपने मकान में अकेले ही रहना पड़ रहा था। घर में एक नौकर था जिसका नाम परमानन्द था जो घर के कामों में हाथ बटाता था एवं महिला की निजी गाड़ी को भी

चलाने का काम करता था। आराध्य देव जी के सायंकालीन यौगिक प्रवचन में भाग लेकर अपने घर पहुँचने के बाद उस आदरणीया गुरुबहन ने स्वच्छ एवं पवित्र जल से गेहूँ धोया। उसे थोड़ा-थोड़ा कड़ाही में डालकर चूल्हे पर रखकर सुखाया, फिर उसे स्वयं अपने घर पर ही रात्रि में आटा बनाया एवं उसे पूड़ी बनाने के लिए गूंथ कर रख लिया। इसके बाद सत्संग से वापस जाते समय वह पपीता, गाजर, बथुआ का साग एवं अन्य हरी सब्जियाँ गुरुदेव के निमित्त लेकर गयी थी उसको अच्छी प्रकार से काटकर सब्जी के लिए रख दिया। उसके बाद स्नान करके खाना बनाया एवं भोजन को पवित्र पात्र में रखकर उसे हल्के पतले मखमली कपड़े से बाँधकर टिफिन तैयार कर लिया। इस समय प्रातःकाल के चार बज रहे थे, अतः अपना नैतिक कार्यक्रम उसने किया। आरती पूजन, श्री मद्‌भागवत गीता एवं श्री गुरुगीता का पाठ किया करीब आधे घण्टे ध्यान में बैठी एवं ठीक साढ़े सात बजे तैयार हो गयी। उसने घरेलू नौकर परमानन्द को गाड़ी साफ कर लगाने को कह दिया कि मुझे गुरुदेव भगवान से मिलने रेलवे स्टेशन चलना है जल्दी करो। ड्राइवर ने गाड़ी को धोकर पोंछ दिया एवं गाड़ी में तेल मोबिल चेक करने के बाद गाड़ी को चालू किया तो गाड़ी स्टार्ट न हो सकी। उसने अपनी जानकारी से गाड़ी को चेक किया परन्तु गाड़ी में कुछ भी ऐसी खराबी दिखलायी नहीं दी जिससे गाड़ी स्टार्ट न हो सके। इसी बीच आदरणीया गुरु बहन ने उसे दो तीन बार डाँटा भी कि जल्दी ठीक करो। बेचारा ड्राइवर दौड़ा-दौड़ा नजदीक के मैकेनिक के पास गया एवं उससे अनुनय विनय करके उसे नींद से जगाकर लाया एवं गाड़ी ठीक कराया परन्तु इतना करते-करते प्रातःकाल साढ़े आठ का समय हो गया था। महिला ने भोजन के टिफिन के साथ रेलवे स्टेशन की यात्रा आरम्भ की। पूरे रास्ते में ट्रैफिक संकेतों के कारण गाड़ी को थोड़ी-थोड़ी देर के लिए पाँच स्थानों पर रुकना पड़ा। अतः देर होना स्वाभाविक ही है।

उधर ट्रेन ठीक प्रातः काल नौ बजे प्लेटफार्म नम्बर एक पर आकर लग गयी। रिजर्वेशन एवं सामान्य सभी श्रेणियों के यात्री गाड़ी में अपना सामान एवं स्थान निश्चित कर बैठ गये। आराध्यदेव जी के साथ चलने वालों की संख्या आठ थी। जिसमें श्री गुरुदेव भगवान के भान्जे आदरणीय श्री सोमदत्तजी, आदरणीय श्री ज्ञानी बाबा जी, आदरणीय भुवनेन्द्र झा जी को छोड़कर ये लोग गुरुदेव भगवान के पास खड़े थे बाकी सब लोग अपनी-अपनी आरक्षित सीटों पर बैठ गये थे एवं श्री गुरु जी महाराज रेलवे स्टेशन के प्लेट फार्म पर रखी एक कुर्सी पर जिस पर आदरणीय ज्ञानी बाबा जी ने अपना कम्बल बिछा दिया था, विराजमान थे। गाड़ी के ड्राइवर और गार्ड भी आ गये एवं उसके साथ चलने वाले रेलवे के और अधिकारी भी गाड़ी में सवार हो गये। ठीक साढ़े नौ बजे गाड़ी का सिग्नल हो गया कि गाड़ी अब चलेगी। गार्ड हरी झण्डी दे रहा है, ड्राइवर ने हरी झण्डी देखकर गाड़ी चालू किया परन्तु ट्रेन अपनी जगह पर ही चालू होकर सीटी देती रही एक कदम भी आगे नहीं बढ़ी। करीब पाँच मिनट प्रयत्न करने के बाद ड्राइवर ने इसकी सूचना अपने अधिकारियों को दी कि चेक किया जाय कि ट्रेन किस खराबी के कारण आगे नहीं बढ़ रही है। अधिकारी एवं तकनीकी

जानकार रेलगाड़ी के इन्जन को चेक कर लिये, कोई खराबी नहीं मिली। अब प्रातःकाल का दस बज गया था एवं इम्पारटेन्ट मेल ट्रेन आधे घण्टे दिल्ली में ही लेट हो गयी। सम्बन्धित सभी अधिकारियों तथा कर्मचारियों के होंठ सूखने लगे, कुछ कारण और निवारण समझ में नहीं आ रहा था। ऊधर जगत नियन्ता श्री गुरुदेव भगवान प्लेटफार्म नं. एक पर लगी कुर्सी पर विराजमान हैं एवं उनकी मधुर मुस्कान उनका दर्शन पाने वाले प्रत्येक प्राणी को अनायास ही अपनी तरफ मोहित कर रही है। हमारे आदरणीय गुरुभाईगण कभी श्री सोमदत्त जी, कभी श्री ज्ञानी बाबाजी, कभी झाजी जब बीच-बीच में उनसे आग्रह कर रहे हैं कि महाराज जी ट्रेन चलने वाली है, गाड़ी में बैठने की कृपा की जाय तो अपने मुखारबिन्दु से वात्सल्य प्रेम के साथ कहते हैं लल्ला ! घबराओ नहीं जब गाड़ी चलनी होगी मैं बैठ जाऊँगा। सवा दस बज गये एवं इस पैंतालिस मिनट के अन्दर हमारे आदरणीय गुरुभाइयों ने जो उनके पास खड़े थे करीब बीस बार प्रार्थना की होगी कि महाराज ! बैठ जाओ, ट्रेन चलने वाली है। ठीक दस बजकर सोलह मिनट पर हाथ में कपड़े में बँधे टिफिन का बड़ा सा डिब्बा लिये, अपने कपड़ों एवं शरीर से बेखबर पागल की भांति दौड़ती जामवन्ती देवी जी प्लेटफार्म पर दिखलायी दी, चूँकि प्लेटफार्म खाली था अतः उन्हें अपने आराध्यदेव को पहचानते देर नहीं लगी और वह दौड़ी-दौड़ी आकर श्री गुरुदेव जी महाराज के कर कमलों में टिफिन का डब्बा सौंप कर फूट-फूट कर रोने लगी। उसने फूट-फूट कर रोते हुए कहा-महाराज जी, हमसे गल्ती हो गयी, मैं समय से नहीं पहुँच सकी, मुझे क्षमा करो, मुझे क्षमा करो। श्री गुरुदेव जी महाराज ने उसे अपने गले से लगा लिया एवं अपने मुखारबिन्दु से कहा कि लल्ली ! तुम मेरी लाडली बच्ची हो। अनेकानेक प्रकार से आशीर्वाद देकर श्री गुरुदेव भगवान ने उसका रोना बन्द कराया एवं फिर गम्भीर वाणी में धीरे से बोले ''लल्ली ! मैं स्टेशन के प्लेटफार्म पर बैठकर तेरा ही तो इन्तजार कर रहा था।'' उनकी इतनी ममतामयी बात सुनकर आदरणीया गुरुबहन जामवन्ती जी फिर फूट-फूट कर रोने लगी। श्री गुरुदेव जी महाराज ने फिर उसे आशीर्वाद देकर शान्त कराया। अपने धोती के कोने से उसके छलकते आँसुओं को अपने वरदहस्त से पोंछते हुए श्री मुख ने कहा-'लल्ली, योगी के बच्चे रोते नहीं। अब तुम जाओ। इस बीच करीब पन्द्रह मिनट का समय और व्यतीत हो गया था। इसके पश्चात आदरणीया गुरुबहन जामवन्ती जी ने फिर गुरुदेव जी को प्रणाम किया एवं उन्हें आशीर्वाद देने के बाद आराध्यदेव जी गाड़ी में जाकर बैठे एवं साढ़े नौ बजे चलने वाली मेल ट्रेन साढ़े दस बजे दिल्ली से अपने गन्तव्य स्थान को रवाना हुयी।

गाड़ी में बैठने के बाद या यों कहा जाय कि श्री गुरुदेव भगवान के प्लेटफार्म पर बैठने का रहस्य पार्षदगणों को, आदरणीय गुरुभक्त गुरुबहन के आने पर ही समझ में आया, इसके पूर्व नहीं। आता भी क्यों ? यदि समझ में आ जाय तो मायापति क्यों कहे जायेंगे। महात्मा श्री तुलसीदास जी ने अनुभवयुक्त तथ्य लिखा है-

शिव विरंचि को मोहयी, को है बपुरा आन

***

सहारनपुर में योग-साधना-शिविर

कु. रुक्मिणी वर्मा

सहारनपुर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज जी का प्रिय क्षेत्र रहा है। श्री गोपालानन्द जी महाराज जी की योग-दीक्षा सहारनपुर में ही हुई थी। गोपालानन्द जी महाराज हलद्वानी से आकर सहारनपुर में चिकित्सा केन्द्र चलाया करते थे, क्योंकि हलद्वानी में एक योगी (जिनका आसन रात भर जमीन से ऊपर उठा रहता था तथा गोपालानन्द जी इन्हें अपना गुरु बनाना चाहते थे) ने इन्हें बताया था कि गुरू तो तुम्हें पूर्ण मिलेंगे और सहारनपुर में मिलेंगे। पंजाबी शरीर होगा, गौर वर्ण होगा। उन योगी जी की बात सुनते ही श्री गोपालानन्द जी सहारनपुर आकर रहने लगे थे। श्री महाप्रभुजी सहारनपुर आया करते थे। महाप्रभु जी के एक शिष्य की गोपालानन्द जी से मित्रता थी। उन्हीं के द्वारा इन्हें सहारनपुर में श्री महाप्रभु जी के प्रथम दर्शन हुए व दीक्षा प्राप्त हुई। हमारी आदरणीया गुरुबहिन मैदामील वाली शशिप्रभा जी जिन्हें आदर से हम बुआजी बुलाया करते हैं। बुआ जी की मिल पर टाटा बिरला वालों ने एक मुकद्मा ठोंक दिया था। अतः इनके मुकदमें की सुनवाई करने के लिए व फैसला एकतरफा इनके हक में करने के लिए, श्री महाप्रभु जी रामलालजी महाराज जी कचहरी में जज बनकर आये थे। यह किस्सा कुछ लम्बा है, अतः फिर किसी लेख में विस्तार से वर्णन किया जायेगा। हमारे आराध्यदेव करुणासिन्धु योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज जी का भी सहारनपुर बहुत प्रिय स्थान रहा है। बहुत पुराने समय से ही गुरुदेव यहाँ आया करते थे। ऋषिकेश 'योग साधन आश्रम' में गंगा दशहरा पर्व बड़ी धूमधाम से मनाने के पश्चात श्री महाराज जी का प्रतिवर्ष सहारनपुर आने का नियम था। गुरुदेव जी आचार्य श्री चन्द्रहास जी से कहा करते थे कि ''लल्ला चलो तुम्हें सहारनपुर ले चलें।'' शायद महाराज जी उन्हें सहारनपुर लाने को इसलिए कहते थे कि सहारनपुर वासियों को आचार्य श्री चन्द्रहास जी से बहुत लगाव है। हमारी आदरणीय गुरुबहिन योग योगिनी डा. उमा शर्मा जी का भी दो बार सहारनपुर में योगप्रचार कार्यक्रम बहुत श्रद्धा व उल्लास से किया गया। आचार्य श्री दासलाल जी हमारे आदरणीय बड़े गुरुभाई जी भी यहाँ पर योगप्रचार कार्यक्रम में आ चुके हैं। आचार्य श्री चन्द्रहास जी का सहारनपुर में बहुत बार पदार्पण हुआ है। सहारनपुर में जो 'सिद्धयोग आश्रम' की स्थापना हुई है, उसकी नींव भी आचार्य प्रवर योग के प्रकाण्ड विद्वान व प्रवक्ता श्री चन्द्रहास जी के पावन कर कमलों द्वारा ही रखी गयी। आज सहारनपुर का 'सिद्धयोग आश्रम' बहुत प्रगति कर चुका है। इस आश्रम को हमारे आदरणीय बड़े गुरुभाई ब्रह्मचारी श्री रामनरेश शुक्ला जी सुशोभित कर रहे हैं। आश्रम की देख-रेख आचार्य श्री शुक्ला जी ही करते हैं। प्रतिमास के प्रथम मंगलवार को आश्रम में गुरुनाम संकीर्तन का आयोजन किया जाता है। इसके अलावा श्री रामनवमी पर श्री महाप्रभु जी का पावन अवतार दिवस, दशहरे को श्री गुरुदेव जी का अवतार दिवस, गुरुपूर्णिमा व शिवरात्रि को बड़ी

धूम-धाम से योग पर्व व भण्डारा आदि का आयोजन किया जाता है। इन कार्यक्रमों में रुड़की, नानौता, थानाभवन, सरसावा तथा अन्य आस-पास के ग्रामों से भी गुरु भाई-बहिन आते हैं।

इसके अलावा प्रत्येक मंगलवार व रविवार को सम्पूर्ण मनोयोग के साथ गुरुभाई-बहिन संकीर्तन किया करते हैं। इसके अतिरिक्त गुरुभाई-बहिन मिलकर सहारनपुर में 'योग साधना शिविर' का आयोजन भी समय-समय पर करते रहते हैं। कहने का तात्पर्य यह कि सहारनपुर में श्री महाप्रभु जी व श्रद्धेय गुरुदेव जी का वरदान निर्मल भाव से गुरुनाम संकीर्तन व सत्संग के रूप में उभर रहा है।

ऐसा ही एक 'योग-साधना-शिविर का आयोजन सहारनपुर के शास्त्रीनगर में श्री मुकेश गुप्ता जी (S.O.Hindustan Liver Ltd.) के निवास-स्थान पर १ व २ अप्रैल, २००२ को किया गया। इस शिविर के मुख्य अतिथि, संचालक, नियन्त्रक व प्रेरक आचार्य प्रवर श्री चन्द्रहास जी थे। आचार्य जी ३१ मार्च को सहारनपुर में पधार चुके थे। शिविर का सभी कार्य घर की छत पर (जो लगभग ३०० गज की है) करने का निर्णय लिया गया था। अतः हमारे भाई जी श्री मुकेश गुप्ता जी ने इस विषय में एक सप्ताह पहले ही तैयारी आरम्भ कर दी थी। इस पूरे कार्यक्रम में भाई मुकेश जी इनकी धर्मपत्नी श्रीमती अर्चनागुप्ता जी व अर्चना गुप्ता जी की माताजी श्रीमती शकुन्तला गोयल जी की सराहनीय भूमिका रही। छत पर टैण्ट लगवाकर श्री महाप्रभु दरबार लगाया गया। दरबार सजाने का कार्य रात्रि ग्यारह बजे तक पूरा हुआ इस कार्य को भाई श्री अवनीश भटनाकर जी, भाई जी आनन्दबंसल जी एवं भाई श्री धर्मेन्द्र गोयल जी ने पूर्ण मनोयोग के साथ किया। ग्यारह बजे तक सभी गुरुभाई-बहिन कार्य को सही दिशा में कराके अपने-अपने घर प्रस्थान कर चुके थे। दरबार की शोभा देखने लायक थी, फूलों की मालाओं से इस प्रकार भव्य प्रकार से सजावट की गयी कि मन मुग्ध हो उठा था टैन्ट की साईड दीवारों पर योगशिक्षा सम्बधी लिखित चार्ट्स लगाये गये थे बहिन शकुन्तला गोयल जी ने रात्रि एक बजे तक सारा काम वश में करने का अथक परिश्रम किया, दरबार के आगे दरियाँ व चाँदनी भी बिछाकर छोड़ दी गयी ताकि सुबह ठीक ७ बजे कार्यक्रम प्रारम्भ हो सके। परन्तु होनहार बलवान है। अभी बहिन जी चांदनी बिछा ही रही थी व फूलों से चारों ओर सजावट कर ही रही थी कि इतने में देखते ही देखते तेज हवाएँ चल पड़ी और पाँच मिनट के अन्दर तेज हवाओं ने आंधी तथा फिर भयंकर तूफान का रूप ले लिया। समय रात्रि एक बजे का था। एक घंटे तक श्री महाप्रभु जी व गुरूजी के स्वरूप को थामे रहे श्री मुकेश जी व शकुन्तला बहिन जी। परन्तु इतने में धड़ाधड़ टैन्ट फटना आरम्भ हो गया। बल्लियाँ चारों ओर से उखड़कर इन महाप्रभु जी व गुरूजी व अन्य विराजमान स्वरूपों को उठाया क्योंकि शीशों के चटकने का डर था। स्वरूप बड़ी मुश्किल से अन्दर झीने के अन्दर वाली छत के नीचे रखे। इतने में ट्यूबलाईट्स टूट-टूटकर पूरी छत पर बिखर गयी व पूरी छत पर काँच ही काँच हो गया। पर्दे बुरी तरह से फटकर इन तीनों को उलझाने लगे। इनके ऊपर टैन्ट चारों ओर से गिरने लगा। चार्ट्स को इतनी बवंडर वाली आँधी में भी मुकेश जी ने सुरक्षित उतारने की भरपूर कोशिश की। कुछ फटकर सड़क में उड़ गये

कुछ बच गये। माइक आदि गिरने लगे। एक कदम आगे बढ़ाते तो कई कदम तूफान पीछे धकेलता। जैसे-तैसे माइक, बैटरी तथा अन्य कीमती वस्तुएँ सुरक्षित जीने (सीढ़ियाँ) की छत के नीचे रखी, वहाँ भी काँच ही काँच बिखरा हुआ था। भाईजी के पैर में काँच चुभ गया परन्तु परवाह नहीं की, ये ही मन में रहा कि जो कुछ भी नुकसान होने से बच सके तो बच जायें। प्रकृति को इतने पर भी रहम नहीं आया। छत की चाहरदिवारी जिनमें टैन्ट की बल्लियों की रस्सी बाँधने के लिए कीलें गाड़ दी गयी थी। बल्लियों के तूफानी झटकों ने दीवार को भी गिराना शुरू कर दिया। ईंटें उखड़-उखड़ कर पड़ौसी की छत पर धड़ाधड़ गिरने लगी। जब मामला बेकाबू हो गया। तो तीनों व्यक्ति सब कुछ जो रह गया था, छोड़कर नीचे आ गये। तूफान लगभग अढाई घंटे तक रहा। तूफान के शान्त होने पर भी तीनों सफाई आदि में तथा नीचे आँगन में काँच फैल चुका था, उसकी सफाई करने में जुट गये। सुबह ७ बजे तक इसी कार्य में लगे रहे परन्तु अपना जोश बरकरार रखा। माथे पर थकावट के चिह्न बिल्कुल नहीं थे। इनकी हिम्मत को देखकर श्री विजय निर्बाध की ये पंक्तियाँ याद आती हैं-

आग में पड़कर भी सोने की दमक जाती नहीं।
काट देने पर भी हीरे की चमक जाती नहीं।।
सिल पर घिस देने से भी, जाती नहीं चन्दन की बू।
फूल की मिट्टी में मिलकर भी महक जाती नहीं।।
रंज में आता नहीं नेकों की परेशानी पर बल।
धूप की तेजी में, सब्जी की लहक जाती नहीं।।

अतः परीक्षा की इस घड़ी में श्री महाप्रभु जी व गुरुजी से प्रार्थना तो करते रहे कि हे प्रभो ! हमसे जो भी भूल हुई है, उसे क्षमा करो और आगे के कार्यक्रम में हमारी सहायता करो। ऐसे में प्रार्थना न करते तो क्या करते क्योंकि-

इन्सान के अज्मो हिम्मत से जब दूर किनारा होता है।
तूफान में टूटी किश्ती का भगवान सहारा होता है।।

कभी-कभी भगवान जीभर परीक्षा लेते हैं। ऐसी परीक्षायें लोहे की तरह तपा कर उस पर हथौड़े के मारने वाली चोट जैसी हुआ करती है परन्तु इन सबके पीछे ईश्वर की एक ही नियति रहा करती है अपने बच्चों को परीक्षा के द्वारा कुन्दन बनाना। अतः श्रद्धा व परिश्रम द्वारा जीवन निर्वाह करना चाहिये।

सीप में मोती मनोरम, कीच में पंकज पला है।
सांस लेना भर नहीं है, जिन्दगी जीना कला है।।
जागरण से नींद जितनी दूर है मनमीत मेरे।
जिंदगी और मौत में बस सिर्फ इतना फासला है।।

श्री महाप्रभु जीने तूफानी परीक्षा के बाद इस प्रकार योग महाप्रभाव पर अपनी रश्मियाँ फैलाई कि रात्रि में जो कुछ हुआ उस तरफ ध्यान ही नहीं गया। प्रथम दिन का प्रथम योग प्रचार कार्यक्रम थोड़ा विलम्ब से अवश्य हुआ परन्तु श्रद्धापूरित भजनों की शुरुआत ने तन-मन झुमा दिया। प्रथम चरण में प्रवक्ता आचार्य श्री चन्द्रहासजी ने ज्यों ही योग सिद्धान्त पर प्रवचन प्रारम्भ किया तो गुरुभाई-बहिनों की कुण्डलिनियाँ मचलने लगी। तरह-तरह की योग मुद्राओं भरी स्थितियाँ बननी प्रारम्भ हो गयी। सब मंत्र मुग्ध से हो गये। आचार्य जी ने 'दुर्लभ मानव जन्म, उस पर मानव जन्म पाकर भी मुमुक्षु और जिज्ञासु होना तथा सद्‌गुरू प्राप्ति' विषय पर प्रकाश डालते हुए सिद्धगुरु के द्वारा कृपादृष्टि के उदाहरण दिये। जीवन को पवित्र व कृपा के लायक बनाने के लिए आचार्य जी ने अन्न शुद्धि पर विशेष बल दिया। शुद्धता से शक्तिपात का ठहरना तथा सिद्धों की कृपा के अनूठे दृष्टान्त (जो यथास्थान पर श्री महाप्रभु जी व गुरुदेव जी द्वारा वर्तमान समय में गुरु भक्तों पर शक्तिपात बरस रहा हैं) दिये। प्रथम चरण के सत्संग समारोह ने ही गुरुभक्तों पर ऐसी खुमारी चढ़ाई कि शब्दों में बाँधी नहीं जा सकती।

कुछ देर विश्राम किया गया क्योंकि जलपान की व्यवस्था भी की गयी थी। अतः साढ़े तीन बजे कीर्तन फिर शुरू कर दिया गया। शाम के कीर्तन में आचार्य श्री शुक्ला जी के आगमन पर भजनों में जो रंग बरसा कि सभी का अन्तःकरण नशे में झूम गया। शुक्ला जी ने ज्यों ही 'श्री चन्द्रमोहन करतार, तुम्हारी महिमा अपरम्पार, भेद तेरा पाया ना' भजन गाया तो सभी का मन मोर की तरह नाचने लगा। भाई श्री बंसल जी ने 'थोड़ा ध्यान लगा, गुरुवर दौड़े-दौड़े आयेंगे' श्री अवनीश भटनागर जी ने 'मेरा कर दो बेड़ा पार संवाई वाले योगेश्वर', भाई श्री नरेश वर्मा जी ने 'मेरे प्रभु जी जगत के नाथ ये दुनिया क्या जाने', भाई श्री टिल्लू जी (मंत्री जी) ने 'भवसागर से तरने के लिए मैं तेरा सहारा चाहता हूँ, बहिन श्रीमती सत्या जी ने 'प्रेमियों प्रेम से बोलो, जयकारा मेरे गुरुदेव का तथा गुरुदेव हमको तेरा बड़ा सहारा है' बहिन श्रीमती सुदेशपुरी जी ने, ये द्वारा प्रभु जी का द्वारा, बहिन श्रीमती पूनम जी (रुड़की निवासी) ने 'चिट्ठी आई गुरुदेव की नेपाल धाम से,' भाई श्री रामगोपाल (नानौता निवासी) जी ने 'कमाल कर गयी तेरी एक ही नजर', बहिन श्रीमती सुषमा जी ने 'साथ ले लो गुरु जी आगे बढ़ जाऊँगी' आदि भजनों ने पूरे कार्यक्रम में इस प्रकार गुरुभक्ति के रंग भरे कि वातावरण भक्ति की सुगन्ध से भर गया। दूसरे चरण में आचार्य श्री चन्द्रहास जी ने 'सिद्धों की कृपास्थली व साधक की साधना स्थली व जीव का प्रभु कृपा से वहाँ पहुँचना तथा श्री महाप्रभु जी द्वारा शक्तिपात करना' विषय पर पूर्ण प्रकाश डाला। गुरुभक्ति पर विवेचन करते हुए आचार्य जी ने समर्पण को महत्वपूर्ण अंग बताया। समर्पण के लक्षण बताते ~~समय~~ आचार्य जी का गला भर आता था तथा आँखें प्रेमाश्रु से नम हो जाती थी शाम को आरती के पश्चात भोजन के साथ द्वितीय चरण पूर्ण हुआ।

तृतीय चरण में भी कीर्तन की गूँज से शुरुआत की गयी। इस दिन प्रातः ८ बजे से रात्रि ८ बजे तक एक मिनट के लिए भी सत्संग नहीं रुका क्योंकि जो व्यक्ति पंगत में बैठकर भोजन करते तो

बाकी व्यक्ति कीर्तन में लगे रहते। उस दिन किसी ने विश्राम नहीं किया क्योंकि गुरु भक्ति भरे भजनों ने सबको अपने साँचे के जादू से मोहित कर रखा था। तृतीय चरण में आचार्य जी ने साधना सम्बन्धी महत्वपूर्ण सिद्धान्त समझाये। आचार्य जी ने कुण्डलिनी जागरण को योग में प्रवेश बताते हुए कहा कि यहाँ से तो जीव की साधना यात्रा प्रारम्भ होती है। इसके आगे बहुत रास्ता तय करना पड़ता है। अतः इस यात्रा में व्यवधान नहीं डालना चाहिये। सामाजिक परवाह न करते हुए स्थिति को आगे बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिये, इस अवस्था में स्वयं को रोकना नहीं चाहिये। श्री महाप्रभु जी आगे का रास्ता स्वयं तय करवा देते हैं। कुण्डलिनी जागरण किन-किन प्रयासों से होता है, इस पर भी आचार्य जी ने प्रकाश डाला। गीता के नित्य पाठ को इस विषय में श्रेष्ठतम साधन बताया। अन्य मंत्रों का भी वर्णन किया जिनके नित्य स्वाध्याय जाप से कुण्डलिनी जाग्रति की ओर बढ़ती है। श्रद्धा का विशेष महत्व बताते हुए आचार्य जी ने कुछ उदाहरण भी दिये कि मात्र गुरुदेव में अतिश्रद्धा होने पर ही यह यात्रा आरम्भ हो जाती है। सिद्धों के दरबार में मात्र सत्संग श्रवण करने से ही कुण्डलिनी जागरण हो जाया करता है।

चतुर्थ चरण में आचार्य जी से प्रार्थना की गयी कि श्री महाप्रभु जी व आराध्यदेव जी की कृपा लीलाओं का ही अधिक वर्णन करें क्योंकि अधिकांश गुरुभाई-बहिनों की ऐसी ही प्रगाढ़ इच्छा थी। आचार्य जी ने इस प्रार्थना को स्वीकार करते हुए इस प्रकार कृपा लीलाओं की झड़ियाँ लगाई कि सभी की आँखें मानो झपकना भूल गयी हों। आँखों से सहज अश्रुपात होने लगा। कुछ गुरुभक्तों की योग स्थिति देखते हुए आचार्य जी ने इस पर भी प्रकाश डाला कि जहाँ श्रद्धा भक्ति भाव से, एकता के साथ, सम्पूर्ण मनोयोग द्वारा गुरुनाम संकीर्तन किया जाता है, वहाँ इस प्रकार की स्थितियाँ सहज भाव से बन जाया करती हैं। आचार्य जी ने नाड़ियाँ, स्वर, कुण्डलिनी व इसकी कलाओं के विषय में काफी जानकारी दी तथा श्री महाप्रभु जी की दिव्य लीलाओं में सबको इस प्रकार सराबोर किया मानो हम कुम्भ स्नान कर रहे हैं। आचार्य जी ने बताया कि सिद्धों के दरबार में सत्संग करने वालों के अन्दर से इस प्रकार किरणें निकलती हैं कि जिसको भी छू भर जाती हैं, उसको भी ध्यानस्थ कर देती हैं।

सत्संग का समापन चौथे चरण में श्री महाप्रभु जी की दिव्य आरती व प्रसाद वितरण के साथ हुआ। धन्य हैं हम कि हमारे बड़े गुरु भाई-बहिन कितने विद्वान हैं। मुझे अच्छी तरह से गुरुदेव की वे बातें अभी तक याद हैं जो उन्होंने संवाई में अपने प्रवचनों में कही थी। गुरुदेव कहते थे, "मेरा एक-एक बच्चा बड़ा भारी विद्वान है।" आज जब हम आचार्य श्री चन्द्रहास जी, आचार्य श्री हांसलाल जी, आचार्य श्री ओमप्रकाश पालीवाल जी, आचार्य श्री पूर्णचन्द पन्तजी, श्री वीरेन्द्रजी, योगिनी दीदी उमा शर्मा जी तथा अन्य विद्वान गुरु भाइयों के प्रवचन सुनते हैं तो समझ आता है कि गुरुदेव इसीलिए कहते थे कि मेरा एक-एक बच्चा बड़ा भारी विद्वान है। सिद्धों की सन्तान सिद्ध करामात ही करके दिखाती है।

अतः हमें अपने विद्वान गुरुभाइयों पर गर्व है। आचार्य जी ने दो दिन में उस प्रेम योग व सिद्ध योग की वर्षा की जिसकी अमृतमयी बूँदों ने हमारे तन-मन के मल को धो दिया। श्री महाप्रभु जी व

गुरुदेव जी से प्रार्थना है कि सहारनपुर में इसी प्रकार योग प्रचार कार्यक्रम का सिलसिला चलता रहे और आचार्य श्री चन्द्रहास जी एवं विद्वान गुरु भाई-बहिन समय-समय पर हमारा मार्गदर्शन करते रहे। महाप्रभु जी की लीला कथाओं को सुनकर मन अघाता नहीं है, क्योंकि हम युगों-युगों की प्यासी मछलियाँ पानी से बाहर रहकर जी भी नहीं सकेंगी। अतः उनकी लीलाएँ ही हमारे लिए शीतल जल है। जिसे ग्रहण करके ही हम सही अर्थ में जी सकते हैं किसी वाणी में इतनी ताकत नहीं जो लीलाधर श्री प्रभु जी की लीलाओं का गान कर सकें। ये तो श्री महाप्रभु जी अपने शक्ति संचार से अपने प्रिय शिष्यों में वह बल भर देते हैं, जिससे उनकी लीलामयी वाणी संचारित होती है। अतः हम नमन करते हैं उन दिव्य विभूतियों को, गुरुभक्तों को जो श्री महाप्रभु जी की लीला सुनाकर हृदय में भक्ति का संचार करके सबकी श्रद्धा को बढ़ा देते हैं। ऐसी महान विभूति वास्तव में आदर, धन्यवाद, नमन तथा पूजन के योग्य है। क्योंकि श्री महाप्रभु जी उनकी वाणी में अपनी ताकत का अधिष्ठान कर देते हैं।

श्री महाप्रभु जी व गुरुदेव अनन्तश्री की कृपा का ही परिणाम है कि यहाँ सत्संग आयोजन होते रहते हैं। हम बद्धजीवों में इतनी शक्ति कहाँ, जो श्री महाप्रभु जी को प्रसन्न कर सकें तथा उनकी लीला का बखान कर सकें। हमारे गुरुभाई श्री नरेन्द्र जी ठीक ही गाते हैं अपने भजन में-"तुम अनादि सिद्ध मैं संसारी, तेरा कीर्तन क्या कर पाऊँगा।" वास्तव में प्रभु जी का कीर्तन करना ये भी उन्हीं की दी हुई ताकत का प्रताप है। जिन अनादि सिद्ध महाप्रभु जी रामलाल जी महाराज की चरण वन्दना करने के लिए देवी देवता व अन्य सिद्ध तरसते हैं हम उनके लाडले बच्चे हैं, यह कम गर्व की बात नहीं है। अतः उनकी दी गयी शक्ति को उन्हीं के नाम संकीर्तन में अपने अभिमान को त्यागकर लगा दें ताकि यह शक्ति दिन-दूनी रात चौगुनी बढ़े। यदि "मैं' शब्द का प्रयोग न करें तो यह शक्ति अपना प्रताप अवश्य दिखायेगी क्योंकि जहाँ 'मैं' है वहाँ शक्ति चली जाती है। कबीर दास जी ने ठीक ही कहा है-

मैं मैं बड़ी बलाय है, सको तो निकसो भाग।
कह कबीर कब लग रहै, रुई लपेटी आग।।

अतः इसी प्रार्थना के साथ विराम कि हे दया सिन्धु, करुणासागर, अहैतु की कृपादृष्टि करने वाले, दीनानाथ, अनादिसिद्ध परम प्रभु श्री रामलाल जी महाराज एवं योग योगेश्वर भक्त वत्सल अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज मेरी 'मैं' को 'मीन' बनाकर अपने पावन भक्ति सागर में मस्त कर दो।

***

जगत् में ईश्वर व्याप्त है, पर उनको पाने के लिये साधना करनी पड़ती है।

श्री सद्गुरु मुख से सुनी कथायें

डा. विजय सिंह

श्री प्रभुजी अपने मुखारविन्द से सतत् साधकों को सचेत अपनी वाणी द्वारा करते रहे। उनके शक्तिपात से साधना क्रम में चल पड़े साधकों को योग के दुरुह पथ का परिचय हो, इसलिये शास्त्रों से प्रेरक प्रसंग, अपने निजानुभूतियों के प्रेरक प्रसंग, श्री प्रभु जी समयानुसार सुनाते रहे हैं। उनमें एक प्रसंग जड़-भरत का है।

गंडकी के उद्भव स्थल के समीपवर्ती जंगल में भरत-मुनि अपने पर्ण कुटीर में रहते हुये अनवरत भगवान नारायण के नाम का स्मरण करते रहते थे। स्वप्न में भी अच्युत, गोविन्द, माधव का नाम स्मरण चलता रहता था। जंगल से समिधा, पूजा के फूल और आहार हेतु कंदमूल लाने के समय भी वे सदैव प्रभुनाम स्मरण में लगे रहते थे। सम्प्रज्ञात ज्योति से उनका मन प्रकाशित था तभी एक समय, मुनि संध्या हेतु महानदी के उद्भव स्थल पर गये। उस समय विशाल कृष्ण मृगों का झुण्ड पानी पीने आया हुआ था। अकस्मात शेर की गर्जना सुनाई पड़ी। चौकन्ने मृगों के झुण्ड कुलाचें भरकर संकीर्ण नदी तट को पार कर देखते-देखते जंगलों में अदृश्य हो गये। एक घटना और परिलक्षित हुई। एक गर्भिणी हरिणी का गर्जना से अथवा तट लंघन के श्रम से गर्भपात हुआ हरिण छौना जल में गिरकर बहने लगा। राजर्षि मुनि भरत की आँखों के सामने तड़ित वेग से यह सब घटित हुआ था। मुनि ने दयावशीभूत जल में कूद, उस डूबते सद्यजात मृग छौने को बचाया। परन्तु क्रूर काल ने तट-लंघन और प्रसव-आघात से हिरणी को अपने पाश में तब तक बाँध चुका था। नवजात छौना मातृविहीन हो चुका था।

दयापरवस मुनि-भरत अपनी बाहों में उस मृग छौने को उठाये अपने आश्रम लौट आये। उस नवजात को जीवन देने हेतु अपने को सम्पूर्णता से लगा दिया। समय पाकर धीरे-धीरे हरिण स्वयं मेव तृण चरने आश्रम से निकलकर जंगल में जाने लगा और तृप्त होकर लौटता तथा राजर्षि भरत मुनि के शरीर से सटकर स्नेह पाता व विश्राम करता।

तृण चरने जब वह हरिण जंगल में जाता तब राजर्षि भरत का मन चिंतित हो उठता। उस समय उनके मन में उस हरिण के ममत्व ने अन्य चिंतनों का अभाव पैदा कर दिया था। वे उसके सिवा और कुछ नहीं सोच सकते थे। उन्होंने अपना राज्य त्याग दिया था, मित्रों, परिजनों, पुत्र-पुत्रियों रानियों का आदर, स्नेह से विरक्त होकर प्रभुनाम स्मरण करने हिमालय के विकट निर्जन स्थल को चुना था। साधना में मन एकाग्रता को प्राप्त होने लगा था कि तभी उपरोक्त घटना संस्कार-वशात घटी और उनके प्राण तथा मन को चलायमान कर दिया। उन्हें अपने शरीर से हरिण के बच्चे का सिर खुजलाना, उसकी कुलाँचे और क्रियायें ही प्राण मन को घेरे रहती, स्मृति बनकर।

उनके मनो नेत्रों के सामने वह हरिण ही बना रहने लगा। जंगल से उसे लौटता न पाकर उनकी

आँखें अश्रुपूरित और मन क्लांत हो उठता था। इस मनोदशा में ही उनका अंतिम समय आ गया। वे तब भी उसके बारे में ही चिंता लीन थे।

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भाव भावितः॥६॥/८

अतः उनका पुनः जन्म हरिण योनि में जंगल में हुआ। परन्तु पूर्व जन्म की साधना के परिणाम से जातस्मरता उन्हें प्राप्त थी। पशु योनि में भी उन्हें पूर्व जन्मों का पूर्ण स्मरण था। सूखी पत्तियों का मात्र ग्रास ग्रहण करते हुये हरिणरूप मुनि पुनः उसी गण्डकी उद्गम स्थल शालिग्राम की ओर बढ़ते गये और वहाँ आहार-त्याग इस योनि से मुक्त हुये। उन्हें अगले जन्म में ब्राह्मण के घर जन्म प्राप्त हुआ। इस जन्म में भी पूर्व साधना के फलस्वरूप उन्हें पूर्व जन्मों का ज्ञान रहा। "अब लौं नसानी, अब ना नसैहौं" का संकल्प मन में लेकर, बाल्यकाल से ही अपने प्रति कुटुम्बिजनों का ममत्व न जगे वे ऐसा उपाय क्रिया-कलापों द्वारा करते रहते थे। विद्वान ब्राह्मण माता-पिता से वे मंद-बुद्धि बालकों जैसा व्यवहार करते। उनके प्रश्नों का उत्तर असबद्ध तथा व्याकरण विहिन, त्रुटिपूर्ण भाषा में उजड़ता से देते। मुख से लार टपकाते रहते। वे एकान्त में जड़ मति-मंद की तरह पड़े रहते। अन्दर वैराग्य की अप्रतिम अग्नि निरन्तर विवेक-ख्याति की ओर खींचे जा रही थी। बाहर जगत् की दृष्टि में मूर्खवत आचरण के कारण लोगों द्वारा तिरस्कृत, उपेक्षित थे। यह उनका काम्य भी नहीं था।

पिता की मृत्यु के पश्चात विद्वान भाई अपठित अपने मूर्ख भाई के साथ दास जैसा व्यवहार करते। खेती के कामों में नियोजित कर बदले में रूखा-सूखा भोजन खाने को देते।

एकदिन राजा सौमीर का सिपाही हृष्ट-पुष्ट निवल्ले भरत को पकड़कर पालकी ढोने के कार्य में लगा दिया जब एक बार राजा भगवान कपिल के आश्रम दर्शनार्थ जा रहे थे। भगवान कपिल मोक्ष प्रदाता, संस्कार विर्वत से मुक्त कराने वाले उस समय के ऋषिवरों में श्रेष्ठ थे। राजा के पालकी ढोने वालों में जड़ भरत को भी नियुक्त किया गया था। पालकी ढोने वालों के पैर और गति समवेत न होने पर सवार को हिचकोले लगने से कष्ट होता है। अतः अनभ्यस्त, आत्मकेन्द्रित, मूर्खों की तरह दीखने वाले ब्रह्मचर्य से पुष्ट शरीर युक्त भरत के पैर अन्य भार वाहकों से न मिलने के कारण राजा को यात्रा में कष्ट होना शुरू हुआ। राजा सौमीर पालकी से बाहर सिर निकाल कर डाँटते हुये जड़-भरत से कहा-देखने में हट्टे-कट्टे, तुम्हारे ऊपर-श्रम का भी कोई असार नहीं दीखता फिर तुम क्यों ठीक से नहीं भार ढो रहे हो।

जड़ भरत ने कहा-राजन! न मैं मोटा हूँ। न मैं थका हुआ हूँ। नहीं मेरे द्वारा यह पालकी ढोने का कार्य ही हो रहा है। राजा ने कहा कि मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ कि तुम स्वस्थ मोटे-ताजे हो, तुम सभी द्वारा पालकी समान रूप से ढोया जा रहा है।

जड़ भरत ने चलते-चलते ही उत्तर दिया-राजन ! आप मुझमें क्या मजबूत या कमजोर देख रहे हैं। पालकी कंधे पर रखी है। कन्धा धड़ पर आधारित है। धड़ को जाँघ, जाँघ को टाँग, टाँ

को दोनों पैर और पैर को धरती सम्भाले हुये है। इन सब में मैं कहाँ हूँ। फिर मुझ पर भार कहाँ है। मैं तो निर्भार हूँ। यह जो शरीर पालकी में बैठा है वह तुम कहाता है। तुम तथा मैं में क्या अन्तर है। मैं और तुम तथा चराचर प्रकृति के व्यापार हैं। जो भिन्न-भिन्न आकार-प्रकार धारण किये हुये हैं। सारे कार्य-व्यवहार अज्ञानता के कारण हैं। जो प्रकृति से परे, आत्म-तत्व है। उसमें न तो मोटाई-ऊँचाई, अच्छा-बुरा कहाँ तक कहें गुणों के कोई धर्म वहाँ नहीं है। फिर किस कारण आप हमें मोटा-शक्तिवान या दुर्बल समझ रहे हैं। ऐसा कहकर जड़भरत मौन हो गये।

राजा पालकी से कूद पड़ा और जड़-भरत के चरणों में साष्टांग प्रणाम करता हुआ कहने लगा-भगवन ! मेरे पर दया करें और कृपा कर बतायें आप इस तरह गुप्त कौन महापुरुष हैं ?

ब्राह्मण देव ने कहा-राजन सुनो ! मैं कौन हूँ यह शब्दों में बताना सम्भव नहीं है। सुख-दुख परिचय-अपरिचय शरीर का गुण धर्म है। पूर्व कर्मों के फल को भोगने के लिये यह शरीर मिलता है। इस पर ही सुख-दुख की अनुभूति है। संसार में जो कुछ भी उपादानों से युक्त अनित्य है वह मात्र रूप परिवर्तन किया हुआ एक दूसरे अनित्य को जनम देता है। अविकारी, अविनाशी तत्व मात्र आत्मा है उसके ही दर्शन से प्रकृति के व्यापार का निरोधान होता है।

इस प्रकार आत्म-प्रबोधन करके जड़-भरत मौन हो गये। राजा जिस प्रश्न के समाधान हेतु भगवान कपिल के दर्शनार्थ जा रहे थे यह कार्य उनकी अनुकम्पा से आत्म-दर्शी जड़भरत द्वारा सम्पादित हुआ।

निष्कर्ष यह कि शाब्दिक ज्ञान भी अज्ञान का ही अंश है। वैराग्य के बिना आत्म-दर्शन असम्भव है। जातस्मरता वैराग्य का प्रदीपक है। स्वयं श्री गुरुदेव भगवान श्री महाप्रभु जी से पूछते हैं-हम कहाँ से आये हैं ? श्री महाप्रभु जी ने कहा-ध्यान द्वारा देखो।

गंगा तट पर ध्यान में श्री गुरुदेव भगवान ने गण्डकी तट के अपने पूर्व संस्कारों का साक्षात्कार किया।

साधना वैराग्य सम्पत्ति के साथ यथार्थ आत्म-दर्शन का कारण बनता है। अन्यथा मानस एकाग्रता पुनः प्रेयों की प्राप्ति में लगकर साधक को अन्तराय युक्त कर देता है।

***

ईश्वर महान् होने पर भी अपने भक्त का तुच्छ उपहार प्रेमपूर्वक प्रसन्न होकर ग्रहण करते हैं।

नेत्र-ज्योति-प्रकाशिनी-नेति-२

नेति-क्रिया की आवश्यकता

इस शरीर में श्वास के आने-जाने का मार्ग जहाँ से प्रारम्भ होता है, और जहाँ पर आकर समाप्त होता है, इसी मार्ग में ईश्वर ने ऐसी नाड़ियों के स्थान निर्माण किए हैं जिन से स्पर्श करते हुए श्वास फेफड़ों में आती है। समस्त प्राणी इस बात को जानते हैं कि श्वासों का गमन और आगमन ही मनुष्य का जीवन है और इन्हीं श्वासों में जीवन शक्ति के प्रत्यागमन से मनुष्य की आयु और बल बढ़ता है। इस विषय में योगियों ने विशेष उच्चसार प्रकट किया है। श्वास कैसे ठीक आये, श्वासों में प्राणशक्ति का संचार किस प्रकार अधिक हो और किस प्रकार मनुष्य इन श्वासों से ही अमृत प्राप्त कर सकता है। जिस अमृत से रोगी भी अपनी इच्छानुसार निरोग होकर बल प्राप्त कर सके। निरोगी पुरुष तो थोड़े से ही अभ्यास से सर्वदा के लिए बलिष्ठ और पुष्ट बन सकता है। ऐसे पुरुषों के समीप पुनः कभी रोग नहीं आ सकता। इन सब से उच्च अवस्था प्राप्त करने के लिए योगियों ने यह निश्चय किया कि प्रारम्भ से ही शरीर का बलिष्ठ होना अत्यावश्यक है। शरीर पुष्ट हो ताकि कोई रोग उस पर अपना प्रभाव न डाल सके। यदि कोई रोग हो भी जाय तो वह उसे क्षणमात्र में ही नष्ट कर सके। योगियों ने अपने साधनों व अपनी पुरातन विचार शक्ति द्वारा इन साधनों को प्रकट किया। इन्हीं साधनों में एक साधन ''नेति-क्रिया'' भी है जिसके विषय में मैं आप के सम्मुख ऋषियों तथा श्री गुरुदेवजी का वर्तमान अनुभव प्रकट करता हूँ, जिससे अन्य प्राणियों को निश्चय हो जाए कि ''नेति-क्रिया'' अनेक प्रकार की औषधियों से महान लाभदायक साधन है। मैं इसी नेति-क्रिया द्वारा अनेक प्रकार के रोगियों के रोग नष्ट कर चुका हूँ।

भगवान् ने मनुष्य का शरीर कैसा विचित्र बनाया है। इस शरीर में समस्त ब्रह्माण्ड की रचना की है जो वस्तु बाह्य संसार में दृष्टिगोचर हो रही है, वह सम्पूर्ण इस शरीर में विद्यमान है। इस शरीर का सबसे बड़ा अंग सिर है। सिर विचार-शक्ति रखता है और सिर में तीन उत्कृष्ट शक्तियों का प्राकृतिक सम्बन्ध होता है। अन्दर और बाहर से बल लेने तथा प्रकृति से सब प्रकार का लाभ उठाने के लिए इसी सिर में नेत्र, नासिका, कर्ण, जीभ, मुख और मस्तिष्क प्रदान किए हैं, जिनके द्वारा प्राणी-मात्र प्रकृति का पूर्ण अनुभव उठाते हैं। यह सम्पूर्ण अंग सिर से बल प्राप्त कर अपना-अपना कार्य पूर्णरूप से करते रहते हैं। प्रकृति ने रोगों के परमाणु बाहर निकालने के लिए कई एक मार्ग निर्माण किए हैं। जिस मार्ग से मनुष्य बल प्राप्त करता है, उसी मार्ग से मल भी शरीर से बाहर निकालता है। यदि नासिका द्वारा हम श्वास लेते हैं तो नासिका द्वारा ही हम अपने शरीर का कफ (नजला) बाहर निकालते हैं, यदि हम चक्षु से देखकर प्राकृतिक सौन्दर्य का ज्ञान प्राप्त करते हैं तो इन्हीं आँखों द्वारा नेत्रों का गंदा जल और मल बाहर निकालते हैं। यदि हम मुख द्वारा स्वादिष्ट भोजन कर शक्ति प्राप्त करते हैं तो इसी मुख द्वारा बलगम बाहर निकालते हैं। इसी प्रकार कानों से सुनते भी हैं और मल भी बाहर निकालते हैं। यह एक माना हुआ सिद्धान्त है कि यदि शरीर में मल

संचित न हो और वह मल सदैव बाहर निकलता रहे तो मनुष्य कदापि रोगी नहीं हो सकता। चरक-शास्त्र के अनुभवी विद्वानों का कथन है कि शरीर के अन्दर ऐसी शक्ति है जो शरीर में समस्त रोगों को शीघ्र नष्ट करती है और अन्दर किसी भी रोग को घुसने नहीं देती। वह शक्ति अमूल्य है और उसका निवास स्थान सिर है। सिर में ऐसी ही तीन महाशक्तियों का समावेश है। सिर में इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना नामक तीन महाशक्तियों के घर हैं। ये ही समस्त शारीरिक शक्ति प्रदान करती है। इन्हीं तीनों नाड़ियों द्वारा जो अमृत टपकता है, उसे ग्रहण करने की योग्यता प्रत्येक मनुष्य में नहीं है। उसका थोड़ा सा अंश मनुष्य के शरीर में रह जाता है, जिसके कारण ही मनुष्य की जीवन-शक्ति बनी रहती है। यदि वह अमृत मनुष्य पूर्णतया प्राप्त कर ले तो न तो उस पर कोई भी विष प्रभाव डाल सकता है, न बुढ़ापा निकट आ सकता है और न किसी प्रकार की कोई व्याधि या कष्ट ही आ सकता है। वह तो अपने शरीर को अमर कर अपनी आयु चिरकाल तक बढ़ा सकता है। परन्तु वह अमृत योग-विद्या की खेचरी नामक मुद्रा द्वारा ही पूर्णतया प्राप्त हो सकता है। मनुष्य जब श्वास लेता है तो वही अमृत श्वास से टकराकर जल बन जाता है। यह जल मनुष्य को हर समय प्राप्त रहता है, जिसे मनुष्य अनुभव भी करता है। योगीराज ऊँचे और लम्बे श्वासों से उत्पन्न हुए जल को भी अमृतरस कहते हैं। उस अमृत जल से शरीर के समस्त जोड़ और अंग पुष्ट होते हैं। उपर्युक्त तीन शक्तियों में एक शक्ति वह है, जो सुख-दुख को अनुभव करती है। इन तीनों शक्तियों का संचार शरीर में आत्मा की चैतन्य शक्ति द्वारा क्रमशः हर समय होता रहता है।

पाठको ! इस समय हमारा तात्पर्य उस अमृत-जल से है जिसे प्राप्त न करने पर मनुष्य अनेक रोगों से ग्रसित रहता है। नासिका से लेकर कण्ठपर्यन्त ऐसी नाड़ियों का समूह है जो मस्तक-मण्डल को सहायता देता है। इन नाड़ियों का शुद्ध रहना परमावश्यक कार्य है। यदि इनमें मल एकत्रित हो जाए तो वही विष बनकर अनेक रोग उत्पन्न कर देता है। यह मल जुकाम बनकर अन्य अंगों को निर्बल बनाकर रोगों के परमाणुओं को स्थान देता है। परिणाम स्वरूप एक रोग के बाद अनेक रोग आ घेरते हैं। यथा एक मनुष्य को जुकाम के बाद खांसी हो जाती है, पुनः खांसी से बढ़ते-बढ़ते दमा और दमे से तपेदिक तक पहुँच जाता है। हमारे ऋषियों ने नाड़ियों से इस कफ को दूर करने के लिए अच्छे-अच्छे साधन बताये हैं, यह पूर्व ही लिखा जा चुका है, कि चक्षु, कर्ण, नासा, मुख इन सब अंगों को पुष्ट रखने वाली शक्ति कपाल से निकल कर इन स्थानों को बल देती हुई सारे शरीर पर अधिकार कर लेती है। उन्हीं नाड़ियों से बलगमी नाड़ियों का मण्डल उत्पन्न होता है, जिनका मध्य स्थान नाक के अन्दर से होता हुआ कण्ठ तक है। जिस समय मनुष्य शीतल वायु में भ्रमण करने के लिए निकलता है, उस समय जो श्वास द्वारा शीतल वायु अन्दर आती है, उससे आँखों में पानी आ जाता है, किन्तु सिर में गर्मी होने के कारण शीतल वायु अच्छी प्रतीत होती है, जब कभी मनुष्य पानी में गोता लगाता है तो नाक से पानी जाने के कारण कान और कपाल पर भी असर होता है, और जब नाक से दूध या पानी पिया जाए तो डकारें आनी आरम्भ हो जाती हैं, जिससे ऐसा प्रकट होता है कि ऊपर की वस्तु किसी ने अन्दर धकेल दी हो और तब कण्ठ साफ हो जाता है। तथा कपाल में नूतन बल आ जाता है, कभी-कभी शीतल वायु के लगने से दाँतों में दर्द हो जाता है। इन बातों से

सिद्ध हुआ कि नासिका के मार्ग से कोई भी वस्तु सेवन की जाए तो उसका प्रभाव उसी समय कान, नेत्र, मुखादि पर होता है। जिस समय आँखों से अधिक जल निकलता है तो उस समय नाक से कफ अवश्य ही निकलता है और यदि मुख से कुछ मल निकले तो इस अवस्था में भी नाक के कुछ न कुछ मल अवश्य निकलता है। इससे भी हमारा अनुभव सिद्ध होता है कि समस्त सिर का केन्द्र-स्थान (Centre) नाक से लेकर कण्ठ-पर्यन्त है, जहाँ से मल निकलता रहता है।

योगियों का यह सिद्धान्त है कि धारणा ही मनुष्य के शरीर को उत्पन्न करने और पालन करने में सहायता देती है। यह समस्त संसार को स्वीकार करना होगा। आप अपने अन्दर दृष्टि डालकर देखें और विचार करें कि आपके विचारों का प्रभाव शरीर पर पड़ता है या नहीं। यदि आप मन को एकाग्र करके विचारेंगे तो आपको प्रतीत होगा कि मनुष्य के शरीर पर बलवर्धक भोजन का इतना अधिक प्रभाव नहीं पड़ता जितना कि बलिष्ठ और ओजस्वी विचारों का। जैसे एक ग्रामीण और एक नागरिक मनुष्य को ही देखिये कि ग्रामीण मनुष्य न तो व्यायाम ही करता है और न उसे पौष्टिक भोजन ही मिलता है किन्तु फिर भी वह अधिक बलवान होता है। इसके विपरीत नागरिक को भोजन भी पौष्टिक मिलता है और वह व्यायाम भी करता है किन्तु विचार दुर्बल होने के कारण उसका शरीर निर्बल रहता है। यदि साथ-साथ दो मित्र उद्यान में भ्रमण करने जाते हैं और शीतल समीर वहाँ अठखेलियाँ ले रही है तो उस समय एक मित्र के हृदय में तो भाव उठता है कि कैसी बलप्रदायिनी वायु बह रही है किन्तु दूसरे के हृदय में इसके विपरीत भाव उत्पन्न हो जाता है कि कहीं शीतल वायु के लगने से निमोनिया न हो जाए। इस प्रकार के दुर्बल विचारों के कारण उसका शरीर कम्बल से ढंका होने पर भी सचमुच निमोनिया का शिकार हो जायेगा। अब तो आप भली प्रकार समझ गए होंगे कि बलिष्ठ और दुर्बल विचारों का प्रभाव मनुष्य के शरीर पर कितना गहरा पड़ता है ? विचारों के प्रभाव को अधिक समझाने के लिए एक और उदाहरण लीजिए। किसी व्यक्ति के पास कहीं से तार आता है कि उसके अमुक सम्बन्धी का देहान्त हो गया है। इस समाचार के पाते ही उसका शरीर ऐसा पीला पड़ जाता है कि जैसे वर्षों का रोगी हो। इससे यह प्रत्यक्ष सिद्ध है कि जिस मनुष्य पर विचारों का जितना गहरा प्रभाव पड़ता है, वह उतना ही शीघ्र उस ओर बह जाता है। विषय विष मनुष्य के लिए इतना प्राणघातक नहीं हो सकता जितना कि उसके मानसिक भाव प्राणघातक हो सकते हैं। अतः जहाँ बुरे विचार मनुष्य का नाश करते हैं वहाँ अच्छे विचार शरीर को नाड़ियों द्वारा हर प्रकार की शक्ति देते हैं। यहाँ तक कि वह विचार शक्ति रोम-रोम में, नस-नस में बल पहुँचाने की एक ऐसी करेन्टयुक्त तार है, जिसमें बिजली के हजारों लैम्पों को प्रकाशित करने की क्षमता है। शरीर में विचारों द्वारा आत्मिक शक्ति का संचार होता है और उसी के अनुसार शरीर में परिवर्तन हुआ करते हैं। यदि आप बलदायक पौष्टिक भोजन करते हैं और उसमें कोई हानिकारक वस्तु मिश्रित हो किन्तु आपको उसका ज्ञान न हो तो आप पर उतना प्रभाव नहीं होगा। किन्तु उस समय जब कि आपको यह ज्ञान हो भोजन में हानिकारक वस्तु मिली हुई है, उस समय आपकी विचार तरंग कपाल से उठकर मन पर प्रभाव डालेगी और मन आमाशय (मेदे) पर। यह प्रभाव इतना दृढ़ होता है कि मन अपना कार्य छोड़कर विपरीत कार्य करने लगता है।

(क्रमशः)

सम्पादकीय सूचना

'सिद्धयोग' पत्रिका का मुख्य उद्देश्य योग के शाश्वत् सिद्धान्तों को सरल भाषा एवं रीति से प्रचारित करना है। इसके लिए इसमें स्मृति–पुराण–श्रुति एवं योग साहित्य में वर्णित एवं यौगिक विषयों से संबंधित प्रेरणादायी सामग्री प्रकाशित की जाती है। किसी मत अथवा सम्प्रदाय, आचार्य परम्परा एवं उनके सिद्धान्तों का खण्डन–मण्डन करना इस पत्रिका की प्रकृति नहीं। पत्रिका के सम्पादन में इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि जो भी लेख आदि सामग्री इसमें प्रकाशित हो वह पूर्णतः यौगिक विश्व को समर्पित हो और उससे पाठकगण एवं साधक उत्तरोत्तर लाभान्वित होते रहें।

हमारे इस प्रयास में प्रबुद्ध लेखकों का सदैव ही महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। अतः लेखकों को चाहिये कि वे सिद्धयोग परम्परा से सम्बन्धित एवं योग विषयक शोधपूर्ण लेख स्वच्छ एवं सुस्पष्ट अक्षरों में कागज के एक ओर ही लिखकर निम्नांकित पते पर संप्रेषित करें–

ब्र. दासलाल शर्मा, सम्पादक

सिद्धयोग कार्यालय

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एतमादपुर) आगरा

हृदय में प्रभु का नित्य ध्यान हो, मुख से उनका नामकीर्तन हो, कानों में सदा उनकी ही कथा गूँजती हो, प्रेमानन्द से उनकी ही पूजा हो, नेत्रों में हरि की मूर्ति विराज रही हो, चरणों से उनके ही स्थान की यात्रा हो, रसना में प्रभु के तीर्थ का रस हो, भोजन हो तो वह प्रभु का प्रसाद ही हो। साष्टांग नमन हो उनके ही प्रति, आलिंगन हो आह्लाद से उनके ही भक्तों का और एक क्या आधा पल भी उनकी सेवा के बिना व्यर्थ न जाय। सब धर्मों में यही श्रेष्ठ धर्म है।

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक
श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER
BOOK-POST

श्री

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥

(शुक्लयजुर्वेद ४०/७)

जिस ज्ञान के समय समस्त प्राणी एक आत्मा ही हो जाते हैं, अर्थात् नाम रूपात्मक आरोपित जगत् का अधिष्ठान आत्मा में बाध हो जाता है, केवल आत्मा ही परिशिष्ट रह जाता है, ऐसे विज्ञान वाले एवं सर्वत्र एक आत्मभाव का ही अनुदर्शन करने वाले को उस समय मोह-माया एवं शोक क्या ? अर्थात् अद्वय-आत्म-ज्ञान से अज्ञान की निवृति होने पर अज्ञान के शक्ति-द्वय रूप आवरणात्मक मोह एवं विक्षेपात्मक शोक की भी सुतरां निवृति हो जाती है।

प्रकाशक एवं मुद्रक :– विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसई कलाँ, ताजगंज, आगरा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, जौहरी बाजार, आगरा से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र सवांई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। फोन : 732326 सम्पादक–आचार्य ब्र० (डा.) रासलाल शर्मा